रीतिकाल

परिस्थितियाँ एवं प्रकृतियाँ

(Ritikal: Circumstances and Nature)

सतवंत सिंह

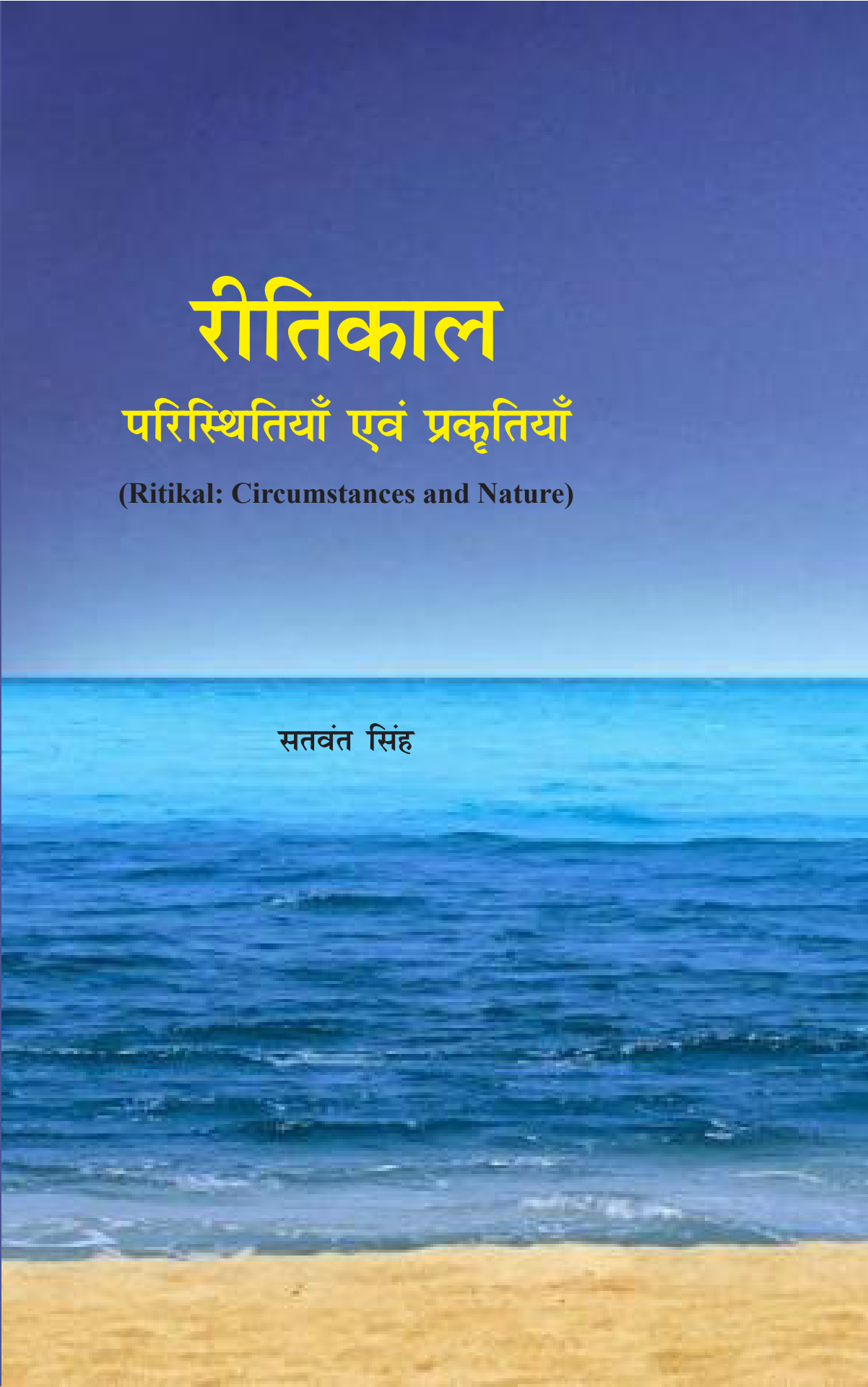

रीतिकाल : परिस्थितियाँ एवं प्रकृतियाँ

रीतिकाल : परिस्थितियाँ एवं प्रकृतियाँ

(Ritikal: Circumstances and Nature)

सतवंत सिंह

भाषा प्रकाशन

नई दिल्ली - 110002

© प्रकाशक

I.S.B.N. : 978-81-323-5576-2

प्रथम संस्करण : 2021

भाषा प्रकाशन

22, प्रकाशदीप बिल्डिंग, अंसारी रोड,
दरियागंज, नई दिल्ली - 110002

द्वारा वर्ल्ड टेक्नोलॉजीज नई दिल्ली के सहयोग से प्रकाशित

प्रस्तावना

हिन्दी में रीति साहित्य के विकास के अनेक कारण हैं। एक कारण तो संस्कृत में इसकी विशाल परम्परा है। जिस समय भाषा-साहित्य का प्रारम्भ हुआ, उस समय भी संस्कृत में लक्षण या अलंकार-साहित्य की रचना चल रही थी। दूसरा कारण भाषा-कवियों को प्राप्त राज्याश्रय है। अकबर ने सबसे पहले हिन्दी कवियों को दरबार में आश्रय प्रदान किया और इस प्रकार हिन्दी काव्य को प्रोत्साहन मिला। आगे चलकर अन्य राजाओं ने भी इस प्रवृत्ति का अनुसरण किया। राजपूताना तथा मध्यभारत की रियासतों, ओरछा, नागपुर आदि में भाषा-कवियों को राज्याश्रय प्राप्त हुआ और आगे इन्हें हिन्दू और मुसलमान, दोनों के ही दरबार में प्रतिष्ठा मिली। इसके फलस्वरूप व्यापक रीति-साहित्य की रचना हुई। हिन्दी रीति-साहित्य के विकास का तीसरा कारण भी सामने आता है, जो है कवि और काव्य के स्वतंत्र रूप की प्रतिष्ठा। इस क्षेत्र में केशवदास का कार्य अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है और इसी कारण उनको आगे के युग में दीर्घ काल तक इतना सम्मान प्राप्त हुआ।

रीति-काव्य के विकास में तत्कालीन राजनीतिक तथा सामाजिक परिस्थितियों का महत्त्वपूर्ण योग रहा है। वस्तुतः ये परिस्थितियाँ इस प्रकार के काव्य सर्जन के अनुकूल थीं। इस समय की राजनीतिक उथल-पुथल और सत्ता एवं वैभव की क्षणभंगुरता ने जीवन के दो अतिरेकपूर्ण दृष्टिकोण विकसित करने में सहायता दी। एक ने जीवन के प्रति पूर्ण विरक्ति और त्याग का भाव जाग्रत किया, जबकि दूसरे ने पूर्ण भोग का दृष्टिकोण। ऐहिक काव्य को इस प्रकार का विलासपूर्ण चित्रण करने की प्रेरणा देने में राजनीतिक स्थिति का भी हाथ था।

पुस्तक लेखन में कई लिखित व अलिखित स्रोतों से मदद ली गई है; मैं उन सभी विज्ञ लेखकों के प्रति अपना आभार प्रकट करता हूँ। आशा करता हूँ कि पुस्तक पाठकों के लिए उपयोगी सिद्ध होगी।

–लेखक

अनुक्रम

	प्रस्तावना	*v*
1.	**रीति काल**	**1**
	रीति शब्द की व्याख्या	1
	नामकरण	2
	समृद्धि और विलासिता का काल	2
	श्रृंगारिक साहित्य	3
	रचनाएँ	3
	साहित्य का विकास	3
	सामंतवादी समाज	4
	हिन्दी काव्य पर प्रभाव	5
	रस तथा अलंकार का प्रयोग	9
	अलंकार सम्प्रदाय	9
2.	**रीतिकालीन काव्य की प्रवृत्ति**	**18**
3.	**रीतिकाल के अन्य कवि**	**23**
	असनी वाले प्राचीन ठाकुर	79
	तीसरे ठाकुर बुंदेलखंडी	80
4.	**रीतिकाल की प्रमुख विशेषताएँ**	**99**
	श्रृंगारिकता	102
	राजप्रशस्ति	103
	भक्ति	103

नीति 103
5. रीतिबद्ध काव्य की विशेषताएँ 104
6. रीतिकाल की प्रवृत्तियाँ 107
रीतिकाल की विशेषताएँ 107
7. केशव 110
जीवन परिचय 110
रचनाएं 111
काव्यगत विशेषताएं 111
वर्ण्य विषय 112
प्रकृति चित्रण 112
संवाद योजना 113
पांडित्य-प्रदर्शन 113
8. भूषण (हिन्दी कवि) 117
जीवन परिचय 117
रचनाएँ 118
शिवराज भूषण से कुछ छन्द 119
काव्यगत विशेषताएँ 119
युद्धमूलक 121
9. पद्माकर 127
जन्म और कुल-परिचय 127
कवि का ठाठबाट, राजसम्मान और दानशीलता 128
ग्रन्थ-रचना 129
काव्य-सौंदर्य 129
निधन 130
10. भिखारीदास 131
कविता काल 132
काव्यांगों का निरूपण 133
भिखारी दास का आचार्यत्व 133
परिमार्जित भाषा 134
शैली 134
11. रीतिकाल : मिथक और यथार्थ 135

1

रीति काल

रीतिकाल (1658-1857 ई.) हिन्दी साहित्य का उत्तर मध्यकाल कहलाता है। इस काल के काव्य की प्रमुख धारा का विकास कविता की रीति के आधार पर हुआ। रीतिकाल समृद्धि और विलासिता का काल है। साधना के काल भक्तियुग से यह इसी बात में भिन्नता रखता है कि इसमें कोरी विलासिता ही उपास्य बन गयी, वैराग्यपूर्ण साधना का समादर न रहा। सजाव-शृंगार की एक अदम्य लिप्सा इस युग के साहित्य में प्रतिबिम्बित होती है। रीति-काव्य के विकास में तत्कालीन राजनीतिक तथा सामाजिक परिस्थितियों का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। वस्तुत: ये परिस्थितियाँ इस प्रकार के काव्य सर्जन के अनुकूल थीं। हिन्दी के रीतिशास्त्र का आधार पूर्ण रूप से संस्कृत काव्यशास्त्र है। परन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं है कि हिन्दी में रीतिशास्त्र लिखने वाले प्रत्येक लेखक ने संस्कृत काव्यशास्त्र का पूरा अध्ययन किया था या किसी अन्य ग्रन्थ को पूर्णत: हिन्दी में उतारा था।

रीति शब्द की व्याख्या

'रीति' शब्द संस्कृत के काव्यशास्त्रीय 'रीति' शब्द से भिन्न अर्थ रखने वाला है। संस्कृत साहित्य में रीति को 'काव्य की आत्मा' मानने वाला एक सिद्धान्त है, जिसका प्रतिपादन आचार्य वामन ने अपने ग्रन्थ 'काव्यालंकारसूत्र' में किया था- 'रीतिरात्मा काव्यस्य'। रीति काव्य की आत्मा है और काव्य की श्रेष्ठता की कसौटी रीति है, यह मान्यता इस सिद्धान्त की है। वैदर्भी, पांचाली, गौड़ी, लाटी रीतियाँ हैं। रीति का आधार गुण है। संस्कृत की रीति सम्बन्धी यह

धारणा हिन्दी काव्यशास्त्र के कुछ ही ग्रन्थों में ग्रहण की गयी है। परन्तु रीति की काव्य रचना की प्रणाली के रूप में ग्रहण करने की अपेक्षा प्रणाली के अनुसार काव्य रचना करना, रीति का अर्थ मान्य हुआ। इस प्रकार रीतिकाल का अर्थ हुआ- 'ऐसा काव्य जो अलंकार, रस, गुण, ध्वनि, नायिका भेद आदि की काव्यशास्त्रीय प्रणालियों के आधार पर रचा गया हो।' इनके लक्षणों के साथ या स्वतंत्र रूप से इनके आधार पर काव्य लिखने की पद्धति ही रीति नाम से विख्यात हुई और यह पद्धति जिस काल में सर्वप्रधान रही, वह काल 'रीतिकाल' के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

नामकरण

रीतिकाल 1700 से 1900 तक का काल है। मोटे तौर पर मुगल बादशाह शाहजहाँ के शासन की समाप्ति और औरंगजेब के शासन के प्रारम्भ (1658 ई.) से लेकर प्रथम स्वाधीनता संग्राम (1857 ई.) तक यह काल माना जाता है। इस युग में भक्तिकालीन काव्यधाराओं, जैसे सन्त काव्य, प्रेमाख्यान काव्य, रामभक्ति काव्य, कृष्णभक्ति काव्य, वीर काव्य, नीति काव्य आदि का विकास हुआ। परन्तु सबसे अधिक महत्त्व उसी रीति काव्य को प्राप्त हुआ, जो अलंकारों, रसों, नायिका-भेदों, शब्द-शक्तियों, ध्वनि-भेदों आदि के आधार पर लिखा गया। यह प्रतृत्ति इस युग की नवीन चेतना के रूप में जाग्रत हुई। इस कारण इसी के आधार पर यह नामकरण हुआ।

समृद्धि और विलासिता का काल

रीतिकाल समृद्धि और विलासिता का काल है। साधना के काल भक्तियुग से यह इसी बात में भिन्नता रखता है कि इसमें कोरी विलासिता ही उपास्य बन गयी, वैराग्यपूर्ण साधना का समादर न रहा। नवाब, जागीरदार, मनसबदार, सामन्त-सभी का उद्देश्य विलासिता और समृद्धि का जीवन था। इस समृद्धि के जीवन के लिए साधन किसी भी प्रकार के क्यों न हों, समृद्धि का अर्जन ही सामर्थ्य की सार्थकता थी। ये उच्च वर्ग के लोग कला और कविता के संरक्षक थे। कुछ तो स्वयं कवि एवं कलाकार थे। इस प्रकार इस काव्य में ऐहिक जीवन के सुख-भोग पर बल दिया गया। यह जीवन की क्षणभंगुरता को भुलाकर नहीं, वरन् इसलिए कि इस क्षणभंगुर जीवन में जितने ही दिन सुख-भोग के बीत सकें, उतना ही अच्छा।

शृंगारिक साहित्य

सजाव-शृंगार की एक अदम्य लिप्सा इस युग के साहित्य में प्रतिबिम्बित है। उपासना के लिए जिन राम और कृष्ण का चरित्र भक्तिकाल में अत्युत्कृष्ट रूप में चित्रित हुआ, उनमें भीशृंगारिकता का आरोप करशृंगारिक स्वरूप के उद्‌घाटन में प्रतिभा को लगाया गया। लोकैषणा का सीमित और भोग्य रूप इस काल के यथार्थवादी धरातल का संकेत करता है। पर यह यथार्थवाद सामाजिक क्रान्ति के बीज बोने वाले आधुनिक यथार्थवाद से भिन्न था। वह कला और कारीगरी का यथार्थ है, चिन्तना, ठेस, असन्तोष की चिनगारी बिखेरने वाला यथार्थ नहीं। इस काल की कलात्मक उपलब्धियों में एकरसता है, विविधता नहीं।

रचनाएँ

हिन्दी रीतिकाल के अन्तर्गत सामान्यत: दो प्रकार की रचनाएँ मिलती हैं-

एक तो वे रचनाएँ, जिनमें मुख्यत: काव्यशास्त्र सिद्धान्तों को छन्दोबद्ध किया गया है। स्पष्टत: हिन्दी कवियों का यह प्रयास बहुत महत्त्वपूर्ण नहीं हो सका है। सिद्धान्त प्रतिपादन की दृष्टि से इनका अधिक महत्त्व इस कारण नहीं है कि उनमें मौलिकता का अंश बहुत कम है। इस प्रकार के रीतिग्रन्थ अधिकतर संस्कृत लक्षण ग्रन्थों के अनुवाद हैं या फिर उनकी छाया पर आधारित है। काव्य-रस की दृष्टि से इनका स्तर ऊँचा नहीं है, क्योंकि इन आचार्य कवियों का मुख्य ध्येय काव्य लक्षणों को वर्णित करना था, स्वतंत्र रूप से अनुभूतिपरक काव्य-सर्जन करना नहीं। फिर भी यह अवश्य है कि इन कवियों के उदाहरणों में से कुछ अंश शुद्ध काव्य के अन्तर्गत रखे जा सकते हैं।

दूसरे वर्ग के अन्तर्गत वे रचनाएँ आती हैं, जो काव्य लक्षणों को प्रतिपादित करने की दृष्टि से नहीं लिखी गयीं। इस प्रकार के काव्य में भाषा, भाव तथा शैली-सभी का अत्यन्त निखरा हुआ रूप मिलता है। यह लक्षण मुक्त कविता ही वास्तव में रीतिकाल का प्राणतत्त्व है।

साहित्य का विकास

हिन्दी में रीति साहित्य के विकास के अनेक कारण हैं। एक कारण तो संस्कृत में इसकी विशाल परम्परा है। जिस समय भाषा-साहित्य का प्रारम्भ हुआ, उस समय भी संस्कृत में लक्षण या अलंकार-साहित्य की रचना चल रही थी।

दूसरा कारण भाषा-कवियों को प्राप्त राज्याश्रय है। अकबर ने सबसे पहले हिन्दी कवियों को दरबार में आश्रय प्रदान किया और इस प्रकार हिन्दी काव्य को प्रोत्साहन मिला। आगे चलकर अन्य राजाओं ने भी इस प्रवृत्ति का अनुसरण किया। राजपूताना तथा मध्यभारत की रियासतों, ओरछा, नागपुर आदि में भाषा-कवियों को राज्याश्रय प्राप्त हुआ और आगे इन्हें हिन्दू और मुसलमान, दोनों के ही दरबार में प्रतिष्ठा मिली। इसके फलस्वरूप व्यापक रीति-साहित्य की रचना हुई। हिन्दी रीति-साहित्य के विकास का तीसरा कारण भी सामने आता है, जो है कवि और काव्य के स्वतंत्र रूप की प्रतिष्ठा। इस क्षेत्र में केशवदास का कार्य अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है और इसी कारण उनको आगे के युग में दीर्घ काल तक इतना सम्मान प्राप्त हुआ।

रीति-काव्य के विकास में तत्कालीन राजनीतिक तथा सामाजिक परिस्थितियों का महत्त्वपूर्ण योग रहा है। वस्तुतः ये परिस्थितियाँ इस प्रकार के काव्य सर्जन के अनुकूल थीं। इस समय की राजनीतिक उथल-पुथल और सत्ता एवं वैभव की क्षणभंगुरता ने जीवन के दो अतिरेकपूर्ण दृष्टिकोण विकसित करने में सहायता दी। एक ने जीवन के प्रति पूर्ण विरक्ति और त्याग का भाव जाग्रत किया, जबकि दूसरे ने पूर्ण भोग का दृष्टिकोण। ऐहिक काव्य को इस प्रकार का विलासपूर्ण चित्रण करने की प्रेरणा देने में राजनीतिक स्थिति का भी हाथ था।

सामंतवादी समाज

जहाँ तक सामाजिक पक्ष का सम्बन्ध है, मध्ययुग का समाज सामन्तवादी पद्धति पर आधारित था, जिसमें सम्राट शीर्ष पर था, जिसके बाद उसके अन्तर्गत राजा, अधिकारी और सामन्त थे, जिन्हें समाज में विशेष अधिकार और सम्मान प्राप्त थे। कवियों को अपने इन आश्रयदाताओं की रुचि के अनुसार या उन्हें प्रभावित करने वाला काव्य लिखना आवश्यक था, जिससे उनकी ऐहिक सन्तुष्टि होती थी और प्रतिभा का भी कम से कम एक क्षेत्र में विकास होता रहता था। मध्य काल के अमीर और सामन्त अत्यन्त विलासपूर्ण जीवन व्यतीत करते थे। एक राजा, अमीर अथवा सामन्त के यहाँ दो, तीन, चार या इससे भी अधिक रानियाँ रहती थीं, जिनका काम अपने को अलंकृत करके पति को रिझाना और उसके प्रसन्न होने पर विलास-सामग्री की और वृद्धि करते रहने के अतिरिक्त और कुछ नहीं था। नारी उनके हाथों में भोग-विलास का एक उपकरण मात्र बनकर रह गयी थी। मुगलकालीन भारतीय समाज के जीवन का एक पक्ष

रीतिकाव्य के सौन्दर्य और विलासपूर्ण चित्रण को प्रेरणा देने वाला था। परन्तु इसका दूसरा पक्ष जन साधारण का है। नैतिकता की दृष्टि से जन साधारण का चरित्र इन विलासी दरबारियों की अपेक्षा कहीं अच्छा था, उस पर भक्तिकाल का प्रभाव था।

हिन्दी काव्य पर प्रभाव

मध्ययुगीन मुगल शासन के परिणामस्वरूप कई बातें जीवन में परिव्याप्त हुई दिखती हैं–

प्रथम तो एक केन्द्रीय सुदृढ़ शासक होने से देश के भीतर तुलनात्मक दृष्टि से शान्ति का वायुमण्डल बन गया।

द्वितीय इस शान्ति के अवसर पर जीवन में कला और संस्कृति को विशेष महत्त्व प्राप्त हुआ। शिष्ट और सुसंस्कृत व्यवहार का सम्मान बढ़ा।

तीसरी बात यह है कि इसी शान्ति और समृद्ध के परिणामस्वरूप कला–प्रेम और विलासिता की भावना भी प्रखरता से जाग्रत हुई। जीवन में धर्म को, चाहे वह संकीर्ण अर्थ में ही क्यों न हो, प्रमुख स्थान मिला।

चौथी बात यह है कि भाषा–साहित्य को राजाओं और सामन्तों से संरक्षण और आश्रय मिला।

इन सभी बातों का रीतिकालीन हिन्दी काव्य पर प्रभाव परिलक्षित होता है।

मत

रीतिकालीन काव्य के सम्बन्ध में सामान्यत: दो प्रकार के मत हैं–

एक उसे नितान्त हेय और पतनोन्मुख काव्य कहकर उसके प्रति घृणा और द्वेष का भाव जगाता है।

दूसरा उस पर अत्यधिक रीझकर केवल उसे ही काव्य मानता है और अन्य रचनाओं, जैसे भक्ति और आधुनिक काल की कृतियों को उत्तम काव्य में परिगणित नहीं करता।

रीतिकालीन काव्य पर दोष

रीतिकालीन काव्य पर जो दोष लगाये जाते हैं, वे ये हैं–

अश्लीलता

रीतिकालीन समस्त काव्य को दृष्टि में रखकर जब इन दोषों पर विचार करते हैं तो यह कह सकते हैं कि ये समस्त दोष उस युग के काव्य या समस्त रीतिकाव्य पर लागू नहीं किये जा सकते। साथ ही इन दोषों में से अधिकांश प्रत्येक युग के काव्य में किसी न किसी अंश में पाये जाते हैं। जहाँ तक अश्लीलता का प्रश्न है, तो यह भावना वस्तुत: युग सापेक्ष है। एक ही प्रकार का वस्तु रूप एक युग में अथवा एक स्थिति या अवस्था में अश्लील होता है और दूसरे में नहीं। कालिदास तथा अन्य संस्कृत कवियों की रचनाओं में शरीर के कुछ अवयवों का काव्य में वर्णन और उल्लेख उन दिनों अश्लील नहीं समझा जाता था। आज वह अश्लील समझा जाता है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि अश्लील सापेक्ष पद है। जिन शब्दों (जैसे नीवी, नितम्ब, उरोज आदि) और जिन वर्णनों को आज अश्लील कहते हैं, उन सबकी परम्परा संस्कृत काव्य में गहराई के साथ रही है और बहुत कुछ वहाँ से उस शब्दावली का प्रवेश हिन्दी साहित्य में हुआ है।

समाज को प्रगति प्रदान करने की अक्षमता

दूसरा दोष प्राय: यह लगाया जाता है कि यह काव्य समाज को प्रगति प्रदान करने में समर्थ नहीं है। रीतिकाव्य और कुछ प्रबन्ध काव्यों में भी हमें व्यापक जीवन-दर्शन नहीं मिलता, इसमें कोई सन्देह नहीं। रीतिकाव्य वास्तव में यौवन का मादक, विलासपूर्ण काव्य है। फिर भी उसमें ऐसी उक्तियाँ तथा स्थितियाँ मिलती हैं, जो जीवन का अनुभव और कभी-कभी आदर्श बताती है। अत: आधुनिक दृष्टि से सामाजिक प्रगति को प्रेरणा प्रदान न करते हुए भी, इसमें जीवनोपयोगी तथ्यों का अभाव नहीं है।

आश्रयदाता की प्रशंसा

आश्रयदाता की प्रशंसा में उठी हुई काव्य-स्फूर्ति का सामाजिक तो नहीं, परन्तु ऐतिहासिक महत्त्व अवश्य है। आश्रयदाता की प्रशंसा, कला और काव्य के संरक्षण और आश्रय के कारण भी थी और इसके लिए उनकी उदार भावना सराहनीय है। ये राज्याश्रय, जिनमें रीतिकालीन कलाकृतियों का विकास हुआ, कवि-प्रतिभा को प्रोत्साहित कर सके, साथ ही साथ दूर-दूर से प्रति-भावों को

अपने गुणों और कला-प्रेम के कारण खींच सके। अतः मध्ययुगीन राज्याश्रय ने कला, काव्य के संरक्षण और प्रेरणा के लिए महत्त्वपूर्ण कार्य किया है, यह मानना पड़ेगा।

साहित्य के पक्ष

जैसा कि कहा गया है, रीतिकाल के अन्तर्गत विकसित होने वाले रीति-साहित्य के दो पक्ष हैं-शास्त्रीय और शास्त्रनिरपेक्ष। इन दोनों ही पक्षों के प्रति दृष्टिकोणों में अन्तर है। लगभग एक-सी परिस्थितियों में और कहीं-कहीं तो एक ही कवि द्वारा लिखे जाने पर भी इन दोनों प्रकार की काव्य प्रवृत्तियों में अन्तर, उनके कवियों के दृष्टिकोण के कारण है। पहले वर्ग के कवि अपनी प्रवृत्ति में आचार्य अधिक थे। रीतिग्रन्थ उन्होंने या तो अपनी प्रेरणा से या अधिकांशतः अपने आश्रयदाता की इच्छा से लिखे थे। दूसरे वर्ग के कवि आचार्य रहे हों या न रहे हों, कवि वे अवश्य ही थे।

लेखन परम्परा

रीतिशास्त्र या रीतिकाव्य लिखने की परम्परा हिन्दी को संस्कृत से प्राप्त हुई। संस्कृत साहित्यशास्त्र के पाँच काव्यसिद्धान्तों में से प्रायरू सभी का कुछ न कुछ प्रभाव हिन्दी रीतिशास्त्र पर पड़ा है। परन्तु जहाँ तक शास्त्रीय विवेचन का प्रश्न है, वह रीति और वक्रोक्ति-सिद्धान्तों के आधार पर अधिक नहीं लिखा गया। अलंकार, रस और ध्वनि के ही लक्षण और उदाहरण देने का सामान्यतः प्रयत्न देखने को मिलता है। इन सिद्धान्तों का भी विवेचनात्मक निरूपण कम हुआ है। इसके कई कारण हैं। पहला कारण तो यह है कि हिन्दी में रीतिशास्त्र लिखने वाले कवियों के पूर्ववर्ती तथा समकालीन संस्कृत के ऐसे विद्वान् आचार्य थे, जिन्होंने काव्यशास्त्र के एक या अधिक अंगों को लेकर उनकी बड़ी ही विस्तृत और स्पष्ट व्याख्या की थी। ऐसी दशा में हिन्दी कवियों के लिए कुछ भी मौलिक कार्य करना कठिन था। फिर हिन्दी में लिखने वाले सभी काव्यशास्त्री संस्कृत साहित्य के पूर्ण विद्वान् नहीं थे। इसके अतिरिक्त जिन लोगों के लिए ये ग्रन्थ निर्मित किये जा रहे थे- अर्थात् कवियों के आश्रयदातागण और सामान्य जनता-वे स्वयं इस प्रकार के विवेचन में रुचि नहीं रखते थे। वे मुख्यतः अपने मनोरंजनार्थ हिन्दी काव्य चाहते थे।

संस्कृत काव्यशास्त्र

हिन्दी के रीतिशास्त्र का आधार पूर्ण रूप से संस्कृत काव्यशास्त्र है। परन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं है कि हिन्दी में रीतिशास्त्र लिखने वाले प्रत्येक लेखक ने संस्कृत काव्यशास्त्र का पूरा अध्ययन किया था या किसी अन्य ग्रन्थ को पूर्णत: हिन्दी में उतारा था। प्राय: अपनी योजना के अनुकूल हिन्दी रीतिशास्त्र के लेखक ने अपने आधारभूत ग्रन्थ का पठित या श्रुत ज्ञान प्राप्त किया था। इस कार्य के लिए जिन संस्कृत ग्रन्थों का अधिकांश आधार लिया गया है, वे हैं–

भरत का 'नाट्यशास्त्र'
भामह का 'काव्यालंकार'
दण्डी का 'काव्यादर्श'
उद्भट का 'अलंकारसारसंग्रह'
केशव मिश्र का 'अलंकारशेखर'
अमरदेव का 'काव्यकल्पलताकृति'
जयदेव का 'चन्द्रालोक'
अप्पय दीक्षित का 'कुवलयानन्द'
भानुदत्त के 'रसमंजरी', 'रसतरंगिणी'
विश्वनाथ का 'साहित्यदर्पण'

केशवदास का योगदान

हिन्दी के पूर्ववर्ती अपभ्रंश साहित्य में रीतिशास्त्र की परम्परा नहीं रही। इसको प्रेरणा देने वाला संस्कृत साहित्य ही है और इस परम्परा को हिन्दी में डालने वाले प्रमुख व्यक्ति आचार्य केशवदास (1550 से 1610 ई.) हैं। केशव के पूर्व भी कुछ ग्रन्थ लिखे गये हैं, जिन्हें 'रीतिशास्त्र के ग्रन्थ' कह सकते हैं, परन्तु वे विशिष्ट रचनाएँ–सी ही है, प्रेरक प्रयास के रूप में उन्हें ग्रहण नहीं कर सकते। 'शिवसिंहसरोज' के आधार पर जिस ग्रन्थ का उल्लेख साहित्य के इतिहासकार सर्वप्रथम करते हैं, वह पुण्ड या पुष्य कवि है, जिसने 713 ई. के लगभग हिन्दी भाषा में संस्कृत के किसी अलंकारग्रन्थ का अनुवाद किया था, परन्तु वह ग्रन्थ अभी तक किसी के देखने में नहीं आया। यदि वास्तव में उस समय का कोई इस प्रकार का लिखा ग्रन्थ मिल जाता है, तो वह न केवल रीतिशास्त्र का, वरन् हिन्दी का पहला ग्रन्थ ठहरता है। परन्तु अभी तक इस सम्बन्ध की कोई प्रामाणिक सूचना प्राप्त नहीं हो सकी है।

ऐसी अवस्था में रीतिशास्त्र पर प्राप्त सबसे पहला ग्रन्थ कृपाराम का 'हिततरंगिणी' ही है। इसकी रचना सन 1541 ई. में हुई। यह पाँच तरंगों में विभक्त है और प्रायरू भरत के 'नाट्यशास्त्र' के आधार पर है। इसके पश्चात् 1551 ई. का लिखा मोहनलाल मिश्र का ' श्रृंगारसागर' ग्रन्थ रस और नायिका-भेद का विवरण प्रस्तुत करता है तथा 'अष्टछाप' के प्रसिद्ध कवि नन्ददास का लिखा 'रसमंजरी' ग्रन्थ भी इसी समय के आस-पास का है। करनेस बन्दीजन के ग्रन्थ भी केशव के पूर्ववर्ती ग्रन्थों में ही रखे जा सकते हैं। परन्तु इन आचार्यो और ग्रन्थों में कोई भी विशेष महत्त्वपूर्ण प्रभाव रखने वाला नहीं है। अतः कह सकते हैं कि रीतिशास्त्रीय परम्परा डालने वाले पहले आचार्य केशवदास ही हैं।

रस तथा अलंकार का प्रयोग

केशवदास तथा उनके पूर्ववर्ती कवियों का काव्य, प्रवृत्ति की दृष्टि से तो रीतिकाल में आता है, परन्तु कालक्रम की दृष्टि से नहीं। काल विभाजन की दृष्टि से केशव (1550 से 1610 तक), सुन्दर तथा चिन्तामणि (रचनाकाल 1643 ई. के लगभग प्रारम्भ होता है) का स्थान भक्तिकाल के ही अन्तर्गत है। केशवदास के ग्रन्थों में श्कविप्रिया', और श्रसिकप्रिया' हैं। प्रबन्ध रचना की पद्धति पर लिखा गया श्रामचन्द्रिका' हिन्दी महाकाव्यों की पंक्ति में समादृत है। केशव मूलतः अलंकार सम्प्रदाय के अनुयायी थे। रस सम्प्रदाय के अन्तर्गत सुन्दर तथा चिन्तामणि पूर्व-रीतिकालीन प्रसिद्ध कवि हैं। चिन्तामणि त्रिपाठी की गणना हिन्दी रीतिशास्त्र के उत्कृष्ट और बड़े आचार्यो में है। इनके प्राप्त ग्रन्थों में से 'पिंगलश्रृंगारमंजरी', 'कविकुलकल्पतरु' का विशेष महत्त्व है। रीतिकाल के अन्तर्गत जिन कवियों की गणना की जाती है, वे प्रमुखतः संस्कृत के अलंकार, रस तथा ध्वनि सम्प्रदायों के अनुयायी थे। रीति और वक्रोक्ति सिद्धान्त के आधार पर हिन्दी में कुछ विशेष नहीं लिखा गया।

अलंकार सम्प्रदाय

अलंकार सम्प्रदाय के अनुयायियों में केशव के उपरान्त कालक्रम की दृष्टि से जसवन्त सिंह का नाम आता है। इनका सबसे अधिक प्रसिद्ध रीतिग्रन्थ 'भाषाभूषण' रहा है। मतिराम (1617 ई.) की प्रवृत्ति रस की ओर अधिक है और लक्षणकार की अपेक्षा वे कवि अधिक हैं, फिर भी उनके 'अलंकारपंचाशिका'

(1690 ई.) और 'ललितललाम' ग्रन्थ अलंकार पर हैं। भूषण (1613 से 1715 ई.) मतिराम के भाई थे। इन्हें आलंकारिक भी कहना चाहिए। तथापि इनकी उक्तियाँ वीर रस से पूर्ण हैं, फिर भी इनके प्रधान ग्रन्थ 'शिवराजभूषण' (1653 ई.) में अलंकार के ही लक्षण उदाहरण हैं। भूषण महाराज शिवाजी के मित्र तथा उनके दरबारी कवि थे। इस सम्प्रदाय के अन्य प्रमुख कवियों में गोप, रसिक, सुमति, गोविन्द, दूलह (रचनाकाल 1750 से 1755 ई.), बैरीसाल, गोकुलनाथ तथा पद्माकर हैं। पद्माकर (1753 से 1832 ई.) को रीतिकाल का अन्तिम आलंकारिक कवि कहना चाहिए। कवि और रीति ग्रन्थकार, दोनों के ही रूप में पद्माकर का नाम अत्यन्त प्रसिद्ध हुआ।

रस सम्प्रदाय

रस सम्प्रदाय के अन्तर्गत तोष तथा मतिराम की ख्याति विशेष है। तोष कवि का 1637 ई. का लिखा हुआ ग्रन्थ 'सुधानिधि' है। इसकी सरसता उदाहरणों में है। लक्षणों में कोई विवेचन सम्बन्धी नवीनता नहीं है। इसी प्रकार का ग्रन्थ मतिराम (1617 ई.) का 'रसराज' है। इसमेंशृंगार का नायक-नायिका भेदरूप में वर्णन है। मतिराम के लक्षण महत्त्वपूर्ण नहीं हैं, उदाहरण अवश्य बड़े ही सरस, कोमल तथा कल्पनायुक्त हैं। रस के क्षेत्र में सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य आचार्य देव (1673-1768) का है। देव ने रस पर अनेक ग्रन्थ लिखे हैं, जिनमें अधिकतरशृंगार और नायिकाभेद की ही चर्चा है और एक ही प्रकार के भाव अन्य ग्रन्थों में भी आये हैं। रस सम्बन्धी भावना प्रमुखत: 'भावविलास', 'भवानीविलास' और 'काव्यरसायन' में प्रकट हुई है। देव ने रस के दो भेद माने हैं-लौकिक और आलौकिक। देव के पश्चात् कालिदास, कृष्णभट्ट, कुमारमणि, श्रीपति, सोमनाथ, उदयनाभ, कवीन्द्र दास आदि अनेक आचार्यों ने नायिकाभेद और रस पर लिखा है। परन्तु रस के सम्बन्ध में कोई महत्त्वपूर्ण विचार प्रकट नहीं हुए हैं। इस सम्प्रदाय के अन्य कवियों में रसलीन (अंगदर्पण, रसप्रबोध), दास, रूपसाहि, समनेस, उजियारे, यशवंत सिंह, रामसिंह ('रामनिवास', 1782 ई.) पद्माकर, रसिक, गोविन्द, बेनी प्रवीन तथा काव्य-सौन्दर्य, दोनों ही दृष्टियों से रामसिंह तथा ग्वाल का कार्य महत्त्वपूर्ण है।

ध्वनि के आचार्य

हिन्दी रीतिशास्त्र के अन्तर्गत ध्वनि के सर्वप्रथम आचार्य कुलपति मिश्र हैं। कूर्मवंशी जयसिंह के लिए इन्होंने 'रसरहस्य' की रचना की। 'रसरहस्य' का

रचनाकाल 1670 ई. है। कुलपति के विचार प्रौढ़ और प्रामाणिक हैं, पर कोई नवीन विचार देखने को नहीं मिलते। कुलपति के बाद देव ने ध्वनि पर लिखा है। इस काल के अन्य कवियों में सूरति मिश्र, कुमारमणि भट्ट, श्रीपति, सोमनाथ, भिखारीदास, प्रतापसाहि तथा रामदास के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। रीतिकाल के आचार्य कवियों में भिखारीदास (रचनाकाल 1728–1750 ई.) का नाम प्रथमपंक्ति, है। दास ने 'रससारांश', 'छन्दोर्णवपिंगल', 'काव्यनिर्णय' और 'शृंगारनिर्णय' ग्रन्थ काव्यशास्त्र पर लिखे। काव्यशास्त्र की दृष्टि से सबसे प्रौढ़ और प्रसिद्ध ग्रन्थ 'काव्यनिर्णय' है, जिसमें ध्वनि का विवेचन और रस, अलंकार, गुण, दोष आदि का वर्णन है। हिन्दी रीतिकाव्य (लक्षणरहित काव्य) की परम्परा भक्तिकाल ही प्रारम्भ हो जाती है। कृपाराम, ब्रह्म (बीरबल), गंग, बलभद्र मिश्र, केशवदास, रहीम तथा मुबारक कालक्रम की दृष्टि से यद्यपि भक्तिकाल के अन्तर्गत आते हैं, परन्तु उनकी काव्यपद्धति प्रायः रीतिप्रधान ही थी। उनके कृतित्त्व में प्रमुख ध्यान काव्य रचना का है और कोई यदि है तो गौण। रीतिकाव्य की प्रेरणा मुख्यतः आचार्य केशवदास और अकबर के दरबारी कवियों से ही प्राप्त हुई थी। इस परम्परा के साथ काव्य की एक स्वच्छन्द धारा का विकास हुआ, जिसके प्रवाह ने रीतिकाल में समस्त काव्य रसिकों को ओत-प्रोत कर दिया।

अन्य कवि

इस युग के रीति-कवियों में सबसे प्रथम सेनापति (1589 ई.) का नाम आता है। इनका प्रसिद्ध ग्रन्थ 'कवित्तरत्नाकर' है। सेनापति की विशेष प्रसिद्धि उनके प्रकृति चित्रण तथा श्लेषचमत्कार के कारण है। 'कवित्तरत्नाकर' की रचना सन 1649 ई. में हुई। रीतिकाव्य की इस प्रथम महत्त्वपूर्ण रचना ने हिन्दी रीतिकाव्य को अतिशय प्रेरणा प्रदान की, इसमें सन्देह नहीं। बिहारीलाल (1603–1662 ई.) रीतिकाव्य के सर्वश्रेष्ठ कवि हैं और उनकी यह ख्याति उनके अन्यतम ग्रन्थ श्सतसई' पर आधारित है, जिसे उन्होंने जयपुर के महाराज जयशाह के आदेश पर लिखा था। मुक्तक रचना होते हुए भी सतसई में सतसई का ध्यान अलंकार, रस, भाव, नायिका-भेद, ध्वनि, वक्रोक्ति, रीति, गुण आदि सब पर है और सभी के सुन्दर उदाहरण इसमें हैं।

रीति-परम्परा का पालन करते हुए और भाई होते हुए भी भूषण (1613–1715) की प्रकृति मतिराम के बिल्कुल विपरीत है। भूषण का काव्य

ओजपूर्ण और वीर रस से ओत-प्रोत है। अत: रीतिकाव्य कीशृंगारिक परम्परा का अनुगमन न करके ये वीर-परम्परा का मार्ग प्रशस्त करने वाले हैं। वीर रस पर लिखने वाले तो रीतिकाल में और भी कवि हैं, पर रीति परम्परा पर वीर काव्य लिखने वाले भूषण अकेले हैं। शिवाजी की वीरता तथा अन्य गुणों से प्रेरित भूषण का 'शिवराजभूषण' अलंकारिक सौन्दर्य से भरपूर है। ललित शब्दावली में कोमल भावनाओं को व्यक्त करने वाले सुकुमार कल्पना के कवि मतिराम (1617 ई.) का काव्य रीतिकाव्य का प्रतिनिधित्व करता है। उनके ग्रन्थ 'ललितललाम', 'रसराज', 'अलंकारपंचाशिका' आदि में यद्यपि लक्षण दिये हुए हैं, फिर भी प्रधानता उदाहरण काव्य की है। अत: उनकी गणना रीतिशास्त्रियों में अधिक रीति-कवियों में होती है।

घनानन्द (रचनाकाल 1658 ई.) प्रसिद्ध प्रेमी, भक्त और कवि थे। उनका ध्यान अलंकार, रीति, वक्रोक्ति, नायिका-भेद, रस आदि की ओर नहीं है, फिर भी इनकी रचना में आलंकारिक चमत्कार तथाशृंगार के संयोग और वियोग, दोनों ही पक्षों का इतना दक्षतापूर्ण वर्णन है कि रीति-परम्परा का प्रयास उससे स्पष्ट लक्षित होता है। घनानन्द का 'सुजानसागर' रीतिकाव्य के प्रसिद्ध ग्रन्थों में एक है। देव (1673 ई.) को आचार्य और कवि, दोनों ही रूपों में सफलता प्राप्त हुई है। उनके कृतित्त्व में मौलिकता तथा कवित्वशक्ति का विलक्षण संयोग हुआ है। भाव की पकड़, सूक्ष्म निरीक्षण, भाषा पर अधिकार, छन्द की गति, शब्दवर्णमैत्री, सरसता और उक्तिवैचित्र्य, सब मिल कर देव की रचना को स्मरणीय बनाते हैं। मानव स्वभाव का उन्हें बड़ा सूक्ष्म ज्ञान था। अपने ग्रन्थ 'भावविलास' की रचना देव ने 16 वर्ष की अवस्था में की थी।

भिखारीदास (रचनाकाल 1728-1750 ई.) आचार्य और कवि, दोनों ही रूपों में उत्कृष्ट हैं। जहाँ अपने ग्रन्थों में इन्होंने ध्वनि, अलंकार, रस, नायिका-भेद, छन्द आदि के लक्षण और विवेचन प्रस्तुत किये हैं, वहाँ उनके उदाहरणों द्वारा प्रस्तुत कविता रीतिकाव्य का सुन्दर नमूना है। भिखारीदास के समकालीन रसलीन (सैयद गुलाम नबी बिलग्रामी) का काव्य बड़ा ही चुटीला है और उक्तिचमत्कार के कारण इनके दोहे अत्यन्त प्रसिद्ध हैं। इनके लिखे दो ग्रन्थ मिले हैं-'अंगदर्पण' और 'रसप्रबोध'। बेनी प्रबीन (1753-1833 ई.) रीतिकाव्य के अन्तिम प्रतिभासम्पन्न कवि हैं। इनके ग्रन्थ 'जगद्विनोद' तथा फुटकर छन्दों में रीतिकाव्य की प्रवृत्तियों का सुन्दर परिचय मिलता है। पद्माकर में भावविवृति की विलक्षण शक्ति है। ग्वाल (रचनाकाल 1822-1861 ई.) भी

पद्माकर की परिपाटी पर हैं। इनकी भाषा अधिक प्रांजल न होकर बाजारूपन लिये है। फिर भी इनके वर्णन सुन्दर हैं।

रीतिकालीन काव्य की भाषा

रीतिकालीन काव्य प्रायरू ब्रजभाषा तथा उसके स्थानीय रूपों में लिखा गया। अधिकांश काव्य राजाश्रय में लिखा गया था। अधिक प्रवृत्ति अलंकृत काव्य लिखने की रही है।शृंगार के अन्तर्गत काम-वासना और नारी-सौन्दर्य का चित्रण हुआ है, कहीं-कहीं भक्ति-भावना भी दिखाई दे जाती है। कुछ रचनाओं में वीर-भावना, नीति-उपदेश, लोक ज्ञान, व्यवहार आदि से सम्बन्धित सामग्री मिलती है। इस युग के कवियों का जीवन के प्रति दृष्टिकोण आध्यात्मिक न होकर ऐहिक अधिक है।

सन् 1700 ई.(1757 विक्रमी संवत) के आस-पास हिंदी कविता में एक नया मोड़ आया। इसे विशेषत: तात्कालिक दरबारी संस्कृति और संस्कृत साहित्य से उत्तेजना मिली। संस्कृत साहित्यशास्त्र के कतिपय अंशों ने उसे शास्त्रीय अनुशासन की ओर प्रवृत्त किया। हिंदी में 'रीति' या 'काव्यरीति' शब्द का प्रयोग काव्यशास्त्र के लिए हुआ था। इसलिए काव्यशास्त्रबद्ध सामान्य सृजनप्रवृत्ति और रस, अलंकार आदि के निरूपक बहुसंख्यक लक्षणग्रंथों को ध्यान में रखते हुए इस समय के काव्य को 'रीतिकाव्य' कहा गया। इस काव्य कीशृंगारी प्रवृत्तियों की पुरानी परंपरा के स्पष्ट संकेत संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, फारसी और हिंदी के आदिकाव्य तथा कृष्णकाव्य कीशृंगारी प्रवृत्तियों में मिलते हैं।

इस काल में कई कवि ऐसे हुए हैं, जो आचार्य भी थे और जिन्होंने विविध काव्यांगों के लक्षण देने वाले ग्रंथ भी लिखे। इस युग मेंशृंगार की प्रधानता रही। यह युग मुक्तक-रचना का युग रहा। मुख्यतया कवित्त, सवैये और दोहे इस युग में लिखे गए।

राजा-महाराजा और आश्रयदाता अब केवल काव्यों को पढ़ और सुनकर ही संतुष्ट नहीं होते थे, बल्कि अब वह स्वयं काव्य रचना करना चाहते थे। इस समय पर कवियों ने आचार्य का कर्त्तव्य निभाया।

कवि राजाश्रित होते थे इसलिए इस युग की कविता अधिकतर दरबारी रही जिसके फलस्वरूप इसमें चमत्कारपूर्ण व्यंजना की विशेष मात्रा तो मिलती है परंतु कविता साधारण जनता से विमुख भी हो गई।

रीतिकाल के अधिकांश कवि दरबारी थे। केशवदास (ओरछा), प्रताप सिंह (चरखारी), बिहारी (जयपुर, आमेर), मतिराम (बूँदी), भूषण (पन्ना), चिंतामणि (नागपुर), देव (पिहानी), भिखारीदास (प्रतापगढ़-अवध), रघुनाथ (काशी), बेनी (किशनगढ़), गंग (दिल्ली), टीकाराम (बड़ौदा), ग्वाल (पंजाब), चन्द्रशेखर बाजपेई (पटियाला), हरनाम (कपूरथला), कुलपति मिश्र (जयपुर), नेवाज (पन्ना), सुरति मिश्र (दिल्ली), कवीन्द्र उदयनाथ (अमेठी), ऋषिनाथ (काशी), रतन कवि (श्रीनगर-गढ़वाल), बेनी बन्दीजन (अवध), बेनी प्रवीन (लखनऊ), ब्रह्मदत्त (काशी), ठाकुर बुन्देलखण्डी (जैतपुर), बोधा (पन्ना), गुमान मिश्र (पिहानी) आदि और अनेक कवि तो राजा ही थे, जैसे- महाराज जसवन्त सिंह (तिर्वा), भगवन्त राय खीची, भूपति, रसनिधि (दतिया के जमींदार), महाराज विश्वनाथ, द्विजदेव (महाराज मानसिंह)।

रीतिकाव्य रचना का आरंभ एक संस्कृतज्ञ ने किया। ये थे आचार्य केशवदास, जिनकी सर्वप्रसिद्ध रचनाएँ कविप्रिया, रसिकप्रिया और रामचंद्रिका हैं। कविप्रिया में अलंकार और रसिकप्रिया में रस का सोदाहरण निरूपण है। लक्षण दोहों में और उदाहरण कवित्तसवैए में हैं। लक्षण-लक्ष्य-ग्रंथों की यही परंपरा रीतिकाव्य में विकसित हुई। रामचंद्रिका केशव का प्रबंधकाव्य है जिसमें भक्ति की तन्मयता के स्थान पर एक सजग कलाकार की प्रखर कलाचेतना प्रस्फुटित हुई। केशव के कई दशक बाद चिंतामणि से लेकर अठारहवीं सदी तक हिंदी में रीतिकाव्य का अजस्र स्रोत प्रवाहित हुआ जिसमें नर-नारी-जीवन के रमणीय पक्षों और तत्संबंधी सरस संवेदनाओं की अत्यंत कलात्मक अभिव्यक्ति व्यापक रूप में हुई। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने रीतिकाव्य का शुरूआत केशवदास से न मानकर चिन्तामणि से माना है। उनका कहना है कि - ' केशवदास जी ने काव्य के सब अंगो का निरूपण शास्त्रीय पद्धति पर किया। यह नि:सन्देह है कि काव्यरीति का सम्यक समावेश पहले पहल आॅ.केशव ने ही किया। हिन्दी में रीतिग्रन्थों की अविरल और अखंडित परम्परा का प्रवाह केशव की 'कविप्रिया ' के प्राय:पचास वर्ष पीछे चला और वह भी एक भिन्न आदर्श को लेकर केशव के आदर्श को लेकर नहीं ।' वे कहते है कि-'हिन्दी रीतिग्रन्थो की अखण्ड परम्परा चिन्तामणि से चली, अत:रीतिकाल का आरम्भ उन्हीं से मानना चाहिए'।

परिचय

रीतिकाल के कवि राजाओं और रईसों के आश्रय में रहते थे। वहाँ मनोरंजन और कलाविलास का वातावरण स्वाभाविक था। बौद्धिक आनंद का मुख्य साधन

वहाँ उक्तिवैचित्र्य समझा जाता था। ऐसे वातावरण में लिखा गया साहित्य अधिकतर शृंगारमूलक और कलावैचित्र्य से युक्त था। पर इसी समय प्रेम के स्वच्छंद गायक भी हुए जिन्होंने प्रेम की गहराइयों का स्पर्श किया है। मात्रा और काव्यगुण दोनों ही दृष्टियों से इस समय का नर-नारी-प्रेम और सौंदर्य की मार्मिक व्यंजना करनेवाला काव्यसाहित्य महत्त्वपूर्ण है।

इस समय वीरकाव्य भी लिखा गया। मुगल शासक औरंगजेब की कट्टर सांप्रदायिकता और आक्रामक राजनीति की टकराहट से इस काल में जो विक्षोभ की स्थितियाँ आई उन्होंने कुछ कवियों को वीरकाव्य के सृजन की भी प्रेरणा दी। ऐसे कवियों में भूषण प्रमुख हैं जिन्होंने रीतिशैली को अपनाते हुए भी वीरों के पराक्रम का ओजस्वी वर्णन किया। इस समय नीति, वैराग्य और भक्ति से संबंधित काव्य भी लिखा गया। अनेक प्रबंधकाव्य भी निर्मित हुए। इधर के शोधकार्य में इस समय कीशृंगारेतर रचनाएँ और प्रबंधकाव्य प्रचुर परिमाण में मिल रहे हैं। इसलिए रीतिकालीन काव्य को नितांत एकांगी और एकरूप समझना उचित नहीं है। इस समय के काव्य में पूर्ववर्ती कालों की सभी प्रवृत्तियाँ सक्रिय हैं। यह प्रधान धारा शृंगारकाव्य की है, जो इस समय की काव्यसंपत्ति का वास्तविक निदर्शक मानी जाती रही है।शृंगारी काव्य तीन वर्गों में विभाजित किया जाता है। पहला वर्ग रीतिबद्ध कवियों का है जिसके प्रतिनिधि केशव, चिंतामणि, भिखारीदास, देव, मतिराम और पद्माकर आदि हैं। इन कवियों ने दोहों में रस, अलंकार और नायिका के लक्षण देकर कवित्त सवैए में प्रेम और सौंदर्य की कलापूर्ण मार्मिक व्यंजना की है। संस्कृत साहित्यशास्त्र में निरूपित शास्त्रीय चर्चा का अनुसरण मात्र इनमें अधिक है। पर कुछ ने थोड़ी मौलिकता भी दिखाई है, जैसे भिखारीदास का हिंदी छंदों का निरूपण। दूसरा वर्ग रीतिसिद्ध कवियों का है। इन कवियों ने लक्षण नहीं निरूपित किए, केवल उनके आधार पर काव्यरचना की। बिहारी इनमें सर्वश्रेष्ठ हैं, जिन्होंने दोहों में अपनी 'सतसई' प्रस्तुत की। विभिन्न मुद्राओंवाले अत्यंत व्यंजक सौंदर्यचित्रों और प्रेम की भावदशाओं का अनुपम अंकन इनके काव्य में मिलता है। तीसरे वर्ग में घनानंद, बोधा, द्विजदेव ठाकुर आदि रीतिमुक्त कवि आते हैं जिन्होंने स्वच्छंद प्रेम की अभिव्यक्ति की है। इनकी रचनाओं में प्रेम की तीव्रता और गहनता की अत्यंत प्रभावशाली व्यंजना हुई है।

रीतिकाव्य मुख्यतः मांसलशृंगार का काव्य है। इसमें नर-नारीजीवन के रमणीय पक्षों का सुंदर उद्घाटन हुआ है। अधिक काव्य मुक्तक शैली में है, पर

प्रबंधकाव्य भी हैं। इन दो सौ वर्षों मेंशृंगारकाव्य का अपूर्व उत्कर्ष हुआ। पर धीरे-धीरे रीति की जकड़ बढ़ती गई और हिंदी काव्य का भावक्षेत्र संकीर्ण होता गया। आधुनिक युग तक आते आते इन दोनों कमियों की ओर साहित्यकारों का ध्यान विशेष रूप से आकृष्ट हुआ।

इतिहास साक्षी है कि अपने पराभव काल में भी यह युग वैभव विकास का था। मुगल दरबार के हरम में पाँच-पाँच हजार रूपसियाँ रहती थीं। मीना बाजार लगते थे, सुरा-सुन्दरी का उन्मुक्त व्यापार होता था। डॉ. नगेन्द्र लिखते हैं- 'वासना का सागर ऐसे प्रबल वेग से उमड़ रहा था कि शुद्धिवाद सम्राट के सभी निषेध प्रयत्न उसमें बह गये। अमीर-उमराव ने उसके निषेध पत्रों को शराब की सुराही में गर्क कर दिया। विलास के अन्य साधन भी प्रचुर मात्रा में थे।' पद्माकर ने एक ही छन्द में तत्कालीन दरबारों की रूपरेखा का अंकन कर दिया है-

गुलगुली गिल में गलीचा हैं, गुनीजन हैं,
चाँदनी है, चिक है चिरागन की माला हैं।
कहैं पद्माकर त्यौं गजक गिजा है सजी
सेज हैं सुराही हैं सुरा हैं और प्याला हैं।
सिसिर के पाला को व्यापत न कसाला तिन्हें,
जिनके अधीन ऐते उदित मसाला हैं।
तान तुक ताला है, विनोद के रसाला है,
सुबाला हैं, दुसाला हैं विसाला चित्रसाला हैं। 6

ऐहलौकिकता,शृंगारिकता, नायिकाभेद और अलंकार-प्रियता इस युग की प्रमुख विशेषताएं हैं। प्रायः सब कवियों ने ब्रज-भाषा को अपनाया है। स्वतंत्र कविता कम लिखी गई, रस, अलंकार वगैरह काव्यांगों के लक्षण लिखते समय उदाहरण के रूप में - विशेषकरशृंगार के आलंबनों एवं उद्दीपनों के उदाहरण के रूप में - सरस रचनाएं इस युग में लिखी गईं। भूषण कवि ने वीर रस की रचनाएं भी दीं। भाव-पक्ष की अपेक्षा कला-पक्ष अधिक समृद्ध रहा। शब्द-शक्ति पर विशेष ध्यान नहीं दिया गया, न नाटयशास्त्र का विवेचन किया गया। विषयों का संकोच हो गया और मौलिकता का ह्रास होने लगा। इस समय अनेक कवि हुएकृ केशव, चिंतामणि, देव, बिहारी, मतिराम, भूषण, घनानंद, पद्माकर आदि। इनमें से केशव, बिहारी और भूषण को इस युग का प्रतिनिधि कवि माना जा सकता है। बिहारी ने दोहों की संभावनाओं को पूर्ण रूप से विकसित कर दिया। आपको रीति-काल का प्रतिनिधि कवि माना जा सकता है।

इस काल के कवियों को तीन श्रेणियों में बाँटा जा सकता है-

(1) रीतिबद्ध कवि

(2) रीतिमुक्त कवि

(3) रीतिसिद्ध कवि

विद्वानों का यह भी मत हॅ कि इस काल के कवियों ने काव्य में मर्यादा का पूर्ण पालन किया है। घोरशृंगारी कविता होने पर भी कहीं भी मर्यादा का उल्लंघन देखने को नहीं मिलता है।

2

रीतिकालीन काव्य की प्रवृत्ति

भक्ति औरशृंगार की विभाजक रेखा सूक्ष्म है। भक्ति की अनुभूति को व्यक्त करने के लिए बहुत बार राधा-कृष्ण के चरित्र एवं दाम्पत्य जीवन के विविध प्रतीकों का सहारा लिया गया. कबीर जैसे बीहड़ कवि भी भाव-विभोर हो कह उठते हैं: "हरि मोरा पिउ मैं हरि की बहुरिया". मर्यादावादी तुलसी भी निकटता को व्यक्त करने के लिए "कामिनि नारि पिआरि जिमि" जैसी उपमा देते हैं। कालांतर में राधा-कृष्ण के चरित्र अपने रूप से हट गए और वे महज दांपत्य जीवन के प्रतीक बन कर रह गए. प्रेम और भक्ति की संपृक्त अनुभूति में से भक्ति क्रमशः क्षीण पड़ती गई और प्रेमशृंगारिक रूप में केन्द्र में आ गया। भक्ति काल का रीतिकाल में रूपांतरण की यही प्रक्रिया है।

रीतिकालीन काव्य की मूल प्रेरणा ऐहिक है। भक्तिकाल की ईश्वर-केन्द्रित दृष्टि के सामने इस मानव केन्द्रित दृष्टि की मौलिकता एवं साहसिकता समझ में आती है। आदिकालीन कवि अपने नायक को ईश्वर के जैसा महिमावान अंकित किया था. भक्त कवियों ने ईश्वर की नर लीला का चित्रण किया तो रीतिकालीन कवियों ने ईश्वर एवं मनुष्य दोनों का मनुष्य रूप में चित्रण किया. भक्त कवि तुलसीदास लिखते हैं:

कवि न होउँ नहिं चतुर कहावउँ,
मति अनुरूप राम गुन गाउँ।

परन्तु भिखारीदास का कहना है:

आगे की कवि रीझिहैं तौ कविताई, न तौ,
राधिका कन्हाई सुमिरन को बहानो हैं।

एक के लिए भक्ति प्रधान है, इस प्रक्रिया में कविता भी बन जाए तो अच्छा है। कवि तो राम का गुण-गान करता है। वहीं दूसरे के लिए कविता की रचना महत्त्वपूर्ण है। यदि कविता न बन सके तो उसे राधा-कृष्ण का स्मरण मान लिया जाए. सम्पूर्ण रीति साहित्य को तीन वर्गों में विभक्त किया गया है। रीतिबद्ध, रीतिसिद्ध और रीतिमुक्त. वास्तव में रीतिबद्ध कवि रीतिसिद्ध भी थे और रीतिसिद्ध कवि रीतिबद्ध भी. इस युग के राजाश्रित कवियों में से अधिकांश तथा जनकवियों में से कतिपय ऐसे थे जिन्होंने आत्मप्रदर्शन की भावना या काव्य-रसिक समुदाय को काव्यांगों का सामान्य ज्ञान कराने के लिए रीतिग्रंथों का प्रणयन किया। अत: इनकी सबसे प्रमुख विशेषता व प्रवृत्ति रीति-निरूपण की ही थी। इसके साथ ही आश्रयदाताओं को प्रसन्न करने के लिएश्रृंगारिक रचनाएँ भी की। अत:श्रृंगारिकता भी इस युग की प्रमुख प्रवृत्ति थी. इधर आश्रयदाता राजाओं के दान, पराक्रम आदि को आलंकारिक करने से उन्हें धन-सम्मान मिलता था। वहीं धार्मिक संस्कारों के कारण भक्तिपरक रचनाएँ करने से आत्म लाभ होता था। इस प्रकार राज-प्रशस्ति एवं भक्ति भी इनकी इनकी प्रवृत्तियों के रूप में परिगणित होती है। दूसरी ओर इन कवियों ने अपने कटु-मधुर व्यक्तिगत अनुभवों को भी समय-समय पर नीतिपरक अभिव्यक्ति प्रदान किया। अत: नीति इनकी कविता का अंग कही जा सकती है।

डॉ. नगेन्द्र ने रीति-कवियों की प्रवृत्तियों को दो वर्गों में रखा है:

(क) मुख्य प्रवृत्ति

(ख) गौण प्रवृत्ति

मुख्य प्रवृत्तियों को दो वर्गों में विभाजित किया है:

1. रीति-निरूपण
2. श्रृंगारिकता

और गौण प्रवृत्तियों को तीन भागों में बांटा है:

1. राजप्रशस्ति या वीर काव्य
2. भक्ति
3. नीति।

रीति-निरूपण

रीतिकालीन कवियों के रीति-निरूपण की शैलियों का अध्ययन करने पर तीन दृष्टियाँ दृष्टिगोचर होती हैं।

प्रथम दृष्टि तो मात्र रीति-कर्म की है। इनमें वे ग्रंथ आते हैं जिनमें सामान्य रूप से काव्यांग-विशेष का परिचय कराना ही कवि का उद्देश्य है, अपने कवित्व का परिचय देना नहीं. ऐसे ग्रंथों में लक्षण के साथ उदाहरण या तो अन्य रचनाकारों के काव्य से दिया गया है या इतना संक्षिप्त है कि कवित्व जैसी कोई बात ही नहीं है। राजा जसवंत सिंह का 'भाषाभूषण', गोविंद का 'कर्णाभरण', रसिक सुमति का 'अलंकार चंद्रोदय', दूलह का 'कविकुलकंठाभरण' आदि इसी प्रवृत्ति के परिचायक ग्रंथ हैं।

द्वितीय प्रवृत्ति में रीति-कर्म और कवि-कर्म का समान महत्त्व रहा है। इसके अंतर्गत लक्षण एवं उदाहरण दोनों उनके रचयिताओं द्वारा रचित है तथा उदाहरण में सरसता का पुट मिला हुआ है। देव, मतिराम, केशव, पद्माकर, कुलपति, भूषण आदि के ग्रंथ इसी श्रेणी में आते हैं।

तीसरी प्रवृत्ति के अंतर्गत लक्षणों को महत्त्व नहीं दिया गया है। कवियों ने प्रायरू सभी छंदों की रचना काव्यशास्त्र के नियमों से बद्ध होकर ही किया है, लेकिन लक्षणों को त्याग दिया है। बिहारी, मतिराम आदि की सतसइयाँ, नख-सिख वर्णन संबंधी समस्त ग्रंथ इसी कोटि की रचनाएँ हैं।

काव्यांग-विवेचन के आधार पर इसकी दो अंतः प्रवृत्तियाँ ठहरती हैं।

1. सर्वांग विवेचन
2. विशिष्टांग विवेचन।

सर्वांग विवेचन प्रवृत्ति के अंतर्गत आनेवाले ग्रंथों में कवियों ने सामान्यतः काव्य-हेतु, काव्य-लक्षण, काव्य-प्रयोजन, काव्य-भेद, काव्यशक्ति, काव्य-रीति, अलंकार, छंद आदि का निरूपण किया है। चिंतामणि का 'कविकुलकल्पतः', देव का 'शब्दरसायन', कुलपति का 'रसरहस्य', भिखारीदास का 'काव्य-निर्णय' आदि इसी प्रवृत्ति के ग्रंथ हैं।

विशिष्टांग विवेचन की प्रवृत्ति के अंतर्गत वे ग्रंथ आते हैं जिनमें किसी एक या दो या तीन का विवेचन किया गया है। ये विषय हैंः रस, छंद और अलंकार. इनमें रस-निरूपण की प्रवृत्ति इन कवियों में सर्वाधिक देखने को मिलती है।शृंगार को रसराज के रूप में निरूपित करने का भाव सर्वाधिक है।

विवेचन-शैली के आधार पर इस काल में रीति-निरूपण की मुख्य तीन शैलियां प्रचलित हैं।

प्रथम 'काव्यप्रकाश'-'साहित्यदर्पण' की शैली है। इसके अंतर्गत चिंतामणि के 'कविकुलकल्पतः', देव का 'शब्दरसायन', भिखारीदास का 'काव्य-निर्णय'

आदि को रखा जाता है। इसमें मम्मट-विश्वनाथ द्वारा दी गई संस्कृत-गद्य की वृत्ति के समान ब्रजभाषा गद्य की वृत्ति देकर विषय को समझाया गया है।

दूसरी शैली 'चन्द्रालोक'-'कुवलयानंद' की संक्षिप्त शैली है। जसवंत सिंह की 'भाषाभूषण', गोविंद का 'कर्णाभरण', पद्माकर का 'पद्माभरण', दूलह का 'कविकुलकंठाभरण' आदि इस शैली के ग्रंथ हैं।

तीसरी शैली भानुदत्त की 'रसमंजरी' की है। इसमें लक्षण एवं सरस उदाहरण देकर विषय-निरूपण किया गया है।

शृंगारिकता

शृंगारिकता की प्रवृत्ति रीतिकवियों का प्राण है। एक ओर काव्यशास्त्रीय बंधनों का निर्वाह और दूसरी ओर नैतिक बंधनों की छूट तथा विलासी आश्रयदाताओं के प्रोत्साहन के कारण इस प्रवृत्ति ने जो स्वरूप ग्रहण किया, उसे दूसरे कवियों कीशृंगारिकता से पृथक करके देखा जा सकता है।

शास्त्रीय बंधनों ने इतना रूढ़ बना दिया है किशृंगार के विभाव पक्ष में नायक-नायिका के भेद तथा उद्दीपक सामग्री के प्रत्येक अंग, अनुभवों के विविध रूप, वियोग के भेदोपभेद-सहित विभिन्न कामदशाओं संबंधी रचनाओं के अलग-अलग वर्ग बनाये जा सकते हैं।

दूसरी ओर नैतिक बंधनों की छूट एवं आश्रयदाताओं के प्रोत्साहन के कारण ये कवि अपनी कल्पना के पंख इतने फैला सके हैं कि शास्त्रीय घेरे के भीतर निर्माताओं की अभिरुचि एंव दृष्टि की व्यंजना उनकी इस प्रवृत्ति की विशेषता प्रकट हो जाती है। इन कवियों कीशृंगार भावना में दमन से उत्पन्न किसी प्रकार की कुंठा न होकर शरीर-सुख की वह साधना है जिसमें विलास के सभी उपकरणों के संग्रह की ओर व्यक्ति की दृष्टि केन्द्रित होती है। इनके प्रेम-भावना में एकोन्मुखता का स्थान अनेकोन्मुखता ने इस प्रकार ले लिया है कि कुंठारहित प्रेम की उन्मुक्तता व रसिकता का रूप धारण कर गई है। यही कारण है कि उनके पत्नियों के बीच अकेला नायक किसी मानसिक तनाव का शिकार नहीं होता बल्कि निर्द्वन्द्व होकर भोगने में ही जीवन की सार्थकता समझता है।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि रीतिकवियों की शृंगारिकता में सामान्य रूप से कुंठाहीनता, शारीरिक सुख की साधना, अनेकोन्मुख प्रेमजन्य रूपलिप्सा, भोगेच्छा, नारी के प्रति सामंती दृष्टिकोण आदि शास्त्रीय बंधनों में बँधकर भी पाठकों को आत्मविभोर कर सकती हैं।

राजप्रशस्ति

यह प्रवृत्ति आश्रयदाताओं की दान-वीरता और युद्धवीरता के वर्णन में दृष्टिगोचर होती है। इनकी अभिव्यक्ति में सामान्य रूप से दान की सामग्री की प्रचुरता और आश्रयदाताओं के आतंक के प्रभाव के वर्णनों के कारण वैसा रसात्मक प्रभाव नहीं डाल पाती। यह राजाओं की झूठी प्रशस्ति का ही प्रभाव छोड़ता है। इनमें उत्साह का अभाव ही रहा है।

भक्ति

भक्ति की प्रवृत्ति ग्रंथों के मंगलाचरणों, ग्रंथों की समाप्ति पर आशीर्वचनों, भक्ति एवं शांत रस के उदाहरणों में मिलती है। ये कवि राम-कृष्ण के साथ गणेश, शिव और शक्ति में समान श्रद्धा व्यक्त करते पाये जाते हैं। अत: यह माना जा सकता है कि किसी विशेष सम्प्रदाय के अनुयायी होते हुए भी धार्मिक कट्टरता नहीं थी। वास्तव में इय समय भक्ति धार्मिकता का परिचायक नहीं थी बल्कि विलास से जर्जर दरबारी वातावरण से बाहर आकुल मन की शरणभूमि थी।

नीति

भक्ति इनके आकुल मन शरणस्थली थी तो नीति-निरूपण दरबारी जीवन के घात-प्रतिघात से उत्पन्न मानसिक द्वन्द्व के विरेचन के लिए शाँति का आधार। यही कारण है कि आत्मोपदेशों में इनके वैयक्तिक अनुभवों की छाप प्रायरू देखने को मिल जाती है।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि गौण-प्रवृत्तियों में राज प्रशस्ति की प्रवृत्ति,श्रृंगारी प्रवृत्ति के समान उस युग के दरबारी जीवन में 'प्रवृत्ति' की परिचायक है, जबकि भक्ति एंव नीति ने उससे निवृत्ति की।

3

रीतिकाल के अन्य कवि

रीतिकाल के प्रतिनिधि कवियों का, जिन्होंने लक्षणग्रंथ के रूप में रचनाएँ की हैं, संक्षेप में वर्णन हो चुका है। अब यहाँ पर इस काल के भीतर होनेवाले उन कवियों का उल्लेख होगा जिन्होंने रीतिग्रंथ न लिखकर दूसरे प्रकार की पुस्तकें लिखी हैं। ऐसे कवियों में कुछ ने तो प्रबंध काव्य लिखे हैं, कुछ ने नीति या भक्ति संबंधी पद्य और कुछ नेश्रृंगार रस की फुटकल कविताएँ लिखी हैं। ये पिछले वर्ग के कवि प्रतिनिधि कवियों से केवल इस बात में भिन्न हैं कि इन्होंने क्रम से रसों, भावों, नायिकाओं और अलंकारों के लक्षण कहकर उनके अंतर्गत अपने पद्यों को नहीं रखा है। अधिकांश में ये भीश्रृंगारी कवि हैं और इन्होंने भीश्रृंगाररस के फुटकल पद्य कहे हैं। रचनाशैली में किसी प्रकार का भेद नहीं है। ऐसे कवियों में घनानंद सर्वश्रेष्ठ हुए हैं। इस प्रकार के अच्छे कवियों की रचनाओं में प्रायरू मार्मिक और मनोहर पद्यों की संख्या कुछ अधिक पाई जाती है। बात यह है कि इन्हें कोई बंधान नहीं था। जिस भाव की कविता जिस समय सूझी ये लिख गए। रीतिबद्ध ग्रंथ जो लिखने बैठते थे, उन्हें प्रत्येक अलंकार या नायिका को उदाहृत करने के लिए पद्य लिखना आवश्यक था, जिनमें सब प्रसंग उनकी स्वाभाविक रुचि या प्रवृत्ति के अनुकूल नहीं हो सकते थे। रसखान, घनानंद, आलम, ठाकुर आदि जितने प्रेमोन्मत्त कवि हुए हैं, उनमें किसी ने लक्षणबद्ध रचना नहीं की है।

प्रबंधकाव्य की उन्नति इस काल में कुछ विशेष न हो पाई। लिखे तो अनेक कथा प्रबंध गए, पर उनमें से दो ही चार में कवित्त का यथेष्ट आकर्षण पाया जाता है। सबलसिंह का महाभारत, छत्रासिंह की विजय मुक्तावली, गुरु

गोविंदसिंहजी का चंडीचरित्र, लाल कवि का छत्रप्रकाश, जोधराज का हम्मीररासो, गुमान मिश्र का नैषधचरित, सरयूराम का जैमिनीपुराण, सूदन का सुजान चरित्र, देवीदत्ता की वैताल पच्चीसी, हरनारायण की माधावानल कामकंदला, ब्रजवासी दास का ब्रजविलास, गोकुलनाथ आदि का महाभारत, मधूसूदनदास का रामाश्वमेधा, कृष्णदास की भाषा भागवत, नवलसिंह कृत भाषा सप्तशती, आल्हारामायण, आल्हाभारत, मूलढोला तथा चंद्रशेखर का हम्मीरहठ, श्रीधार का जंगनामा, पद्माकर का रामरसायन, ये इस काल के मुख्य कथानक काव्य हैं। इनमें से चंद्रशेखर के हम्मीरहठ, लालकवि के छत्राप्रकाश, जोधाराज के हम्मीररासो, सूदन के सुजानचरित्र और गोकुलनाथ आदि के महाभारत में ही काव्योपयुक्त रसात्मकता भिन्न-भिन्न परिणाम में पाई जाती है। 'हम्मीररासो' कीरचना बहुत ही प्रशस्त है। श्रामाश्वमेधा' की रचना भी साहित्यिक है। 'ब्रजविलास' में यद्यपि काव्य के गुण अल्प हैं, पर उसका थोड़ाबहुत प्रचार कम पढ़ेलिखे कृष्णभक्तों मेंहै।

कथात्मक प्रबंधों से भिन्न एक और प्रकार की रचना भी बहुत देखने में आती है जिसे हम वर्णनात्मक प्रबंध कह सकते हैं। दानलीला, मानलीला, जलविहार, वनविहार, मृगया, झूला, होलीवर्णन, जन्मोत्सववर्णन, मंगलवर्णन, रामकलेवा इत्यादि इसी प्रकार की रचनाएँ हैं। बड़ेबड़े प्रबंधकाव्यों के भीतर इस प्रकार के वर्णनात्मक प्रसंग रहा करते हैं। काव्यपद्धति में जैसेशृंगाररस के क्षेत्र से 'नखशिख', 'षट्ऋतु' आदि लेकर स्वतंत्र पुस्तकें बनने लगीं वैसे ही कथात्मक महाकाव्यों के अंग भी निकालकर अलग पुस्तकें लिखी गईं। इनमें बड़े विस्तार के साथ वस्तु वर्णन चलता है। कभी कभी तो इतने विस्तार के साथ कि परिमार्जित साहित्यिक रुचि के सर्वथा विरुद्ध हो जाता है। जहाँ कवि जी अपने वस्तु परिचय का भंडार खोलते हैं, जैसे बरात का वर्णन है तो घोड़ों की सैकड़ों जातियों के नाम, वस्त्रों का प्रसंग आया तो पचीसों प्रकार के कपड़ों के नाम और भोजन की बात आई तो, सैंकड़ों मिठाइयों, पकवानों, मेवों के नाम, वहाँ तो अच्छे-अच्छे धीरों का धौर्य छूट जाता है।

चौथा वर्ग नीति के फुटकल पद्य कहने वालों का है। इनको हम कवि कहना ठीक नहीं समझते। इनके तथ्यकथन के ढंग में कभीकभी वाग्वैदग्ध्य रहता है पर केवल वाग्वैदग्ध्य के द्वारा काव्य की सृष्टि नहीं हो सकती। यह ठीक है कि कहीं कहीं ऐसे पद्य भी नीति की पुस्तकों में आ जाते हैं जिनमें कुछ मार्मिकता होती है, जो हृदय की अनुभूति से भी संबंध रखते हैं, पर उनकी संख्या

बहुत ही अल्प होती है। अतः ऐसी रचना करने वालों को हम 'कवि' न कहकर 'सूक्तिकार' कहेंगे। रीतिकाल के भीतर वृंद, गिरिधर, घाघ और बैताल अच्छे सूक्तिकार हुए हैं।

पाँचवाँ वर्ग ज्ञानोपदेशकों का है, जो ब्रह्मज्ञान और वैराग्य की बातों को पद्य में कहते हैं। ये कभी-कभी समझने के लिए उपमा, रूपक आदि का प्रयोग कर देते हैं, पर समझाने के लिए ही करते हैं, रसात्मक प्रभाव उत्पन्न करने के लिए नहीं। इनका उद्देश्य अधिकतर बोधवृत्ति जागृत करने का रहता है, मनोविकार उत्पन्न करने का नहीं। ऐसे ग्रंथकारों को हम केवल 'पद्यकार' कहेंगे। हाँ, इनमें जो भावुक और प्रतिभासम्पन्न हैं, जो अन्योक्ति आदि का सहारा लेकर भगवत्प्रेम, संसार के प्रति विरक्ति, करुणा आदि उत्पन्न करने में समर्थ हुए हैं, वे अवश्य ही कवि क्या, उच्च कोटि के कवि कहे जा सकते हैं।

छठा वर्ग कुछ भक्त कवियों का है जिन्होंने भक्ति और प्रेमपूर्ण विनय के पद आदि पुराने भक्तों के ढंग पर गाए हैं।

इनके अतिरिक्त आश्रयदाताओं की प्रशंसा में वीर रस की फुटकल कविताएँ भी बराबर बनती रहीं, जिनमें युद्ध वीरता और दानवीरता दोनों की बड़ी अत्युक्तिपूर्ण प्रशंसा भरी रहती थी। ऐसी कविताएँ थोड़ीबहुत तो रसग्रंथों आदि में मिलती हैं, कुछ अलंकारग्रंथों के उदाहरण रूप, जैसे, 'शिवराजभूषण' और कुछ अलग पुस्तकाकार जैसे 'शिवाबावनी', 'छत्रसालदशक', 'हिम्मतबहादुरविरुदावली' इत्यादि। ऐसी पुस्तकों में सर्वप्रिय और प्रसिद्ध वे ही हो सकी हैं, जो या तो देवकाव्य के रूप में हुई हैं अथवा जिनके नायक कोई देशप्रसिद्ध वीर या जनता के श्रद्धाभाजन रहे हैं, जैसे, शिवाजी, छत्रसाल, महाराणा प्रताप आदि। जो पुस्तकें यों ही खुशामद के लिए आश्रित कवियों के रूढ़ि के अनुसार लिखी गई, जिनके नायकों के लिए जनता के हृदय में कोई स्थान न था, वे प्राकृतिक नियमानुसार प्रसिद्धि न प्राप्त कर सकीं। बहुत-सी तो लुप्त हो गईं। उनकी रचना में सच पूछिए तो कवियों ने अपनी प्रतिभा का अपव्यय ही किया। उनके द्वारा कवियों को अर्थसिद्धि भर प्राप्त हुई, यश का लाभ न हुआ। यदि बिहारी ने जयसिंह की प्रशंसा में ही अपने सात सौ दोहे बनाए होते तो उनके हाथ केवल अशर्फियाँ ही लगी होतीं। संस्कृत और हिन्दी के न जाने कितने कवियों का प्रौढ़ साहित्यिक श्रम इस प्रकार लुप्त हो गया। काव्यक्षेत्र में यह एक शिक्षाप्रद घटना हुई है।

भक्तिकाल के समान रीतिकाल में भी थोड़ाबहुत गद्य इधरउधर दिखाई पड़ जाता है पर अधिकांश कच्चे रूप में। गोस्वामियों की लिखी श्वैष्णववार्ताओं' के समान कुछ पुस्तकों में ही पुष्ट ब्रजभाषा मिलती है। रही खड़ी बोली। वह पहले कुछ दिनों तक तो मुसलमानों के व्यवहार की भाषा समझी जाती रही। मुसलमानों के प्रसंग में उसका कभी कभी प्रयोग कवि लोग कर देते थे, जैसे, अफजल खान को जिन्होंने मैदान मारा (भूषण)। पर पीछे दिल्ली राजधानी होने से रीतिकाल के भीतर ही खड़ी बोली शिष्ट समाज के व्यवहार की भाषा हो गई थी और उसमें अच्छे गद्य ग्रंथ लिखे जाने लगे थे। संवत् 1798 में रामप्रसाद निरंजनी ने 'भाष योगवाशिष्ठ' बहुत ही परिमार्जित गद्य में लिखा। 1

इसी रीतिकाल के भीतर रीवाँ के महाराज विश्वनाथ सिंह ने हिन्दी का प्रथम नाटक (आनंदरघुनंदन) लिखा। इसके उपरांत गणेश कवि ने 'प्रद्युम्नविजय' नामक एक पद्यबद्ध नाटक लिखा जिसमें पात्रप्रवेश, विष्वंभक, प्रवेशक आदि रहने पर भी इतिवृत्तात्मक पद्य रखे जाने के कारण नाटक का प्रकृत स्वरूप न दिखाई पड़ा।

1. बनवारी–ये संवत् 1690 और 1700 के बीच वर्तमान थे। इनका विशेष वृत्त ज्ञात नहीं। इन्होंने महाराज जसवंत सिंह के बड़े भाई अमरसिंह की वीरता की बड़ी प्रशंसा की है। यह इतिहास प्रसिद्ध बात है कि एक बार शाहजहाँ के दरबार में सलावत खाँ ने किसी बात पर अमरसिंह को गँवार कह दिया, जिस पर उन्होंने चट तलवार खींचकर सलावत खाँ को वहीं मार डाला। इस घटना का बड़ा ओजपूर्ण वर्णन इनके इन पद्यों में मिलता है।

   धान्य अमर छिति छत्रापति, अमर तिहारो मान।
   साहजहाँ की गोद में, हन्यो सलावत खान
   उत गकार मुख ते कढ़ी, इतै कढ़ी जमधार।
   'ग्वार' कहन पायो नहीं, भई कटारी पार
   आनि कै सलावत खाँ जोर कै जनाई बात,
   तोरि धार पंजर करेजे जाय करकी।
   दिलीपति साहि को चलन चलिबे को भयो,
   गाज्यो गजसिंह को, सुनी जो बात बर की
   कहै बनवारी बादसाही के तखत पास,
   फरकि–फरकि लोथ लोथिन सों अरकी।

कर की बड़ाई, कै बड़ाई बाहिबे की करौं,
बाढ़ की बड़ाई, कै बड़ाई जमधार की

बनवारी कवि कीशृंगार रस की कविता भी बड़ी चमत्कारपूर्ण होती थी। यमक लाने का ध्यान इन्हें विशेष रहा करता था। एक उदाहरण लीजिए,

नेह बर साने तेरे नेह बरसाने देखि,
यह बरसाने बर मुरली बजावैंगे।
साजु लाल सारी, लाल करैं लालसा री,
देखिबे की लालसारी, लाल देखे सुख पावैंगे
तू ही उरबसी, उरबसी नाहि और तिय,
कोटि उरबसी तजि तोसों चित लावैंगे।
सजे बनवारी बनवारी तन आभरन,
गोरे तन वारी बनवारी आज आवैंगे

2. सबलसिंह चौहान-इनके निवासस्थान का ठीक निश्चय नहीं। शिवसिंहजी ने यह लिखकर कि कोई इन्हें चन्दागढ़ का राजा और कोई सबलगढ़ का राजा बतलाते हैं, यह अनुमान किया है कि ये इटावा के किसी गाँव के जमींदार थे। सबलसिंहजी ने औरंगजेब के दरबार में रहने वाले किसी राजा मित्रसेन के साथ अपना संबंध बताया है। इन्होंने सारे महाभारत की कथा दोहों चौपाइयों में लिखी है। इनका महाभारत बहुतबड़ा ग्रंथ है जिसे इन्होंने संवत् 1718 और संवत् 1781 के बीच पूरा किया। इस ग्रंथ के अतिरिक्त इन्होंने 'ऋतुसंहार का भाषानुवाद', 'रूपविलास' और एक पिंगलग्रंथ भी लिखा था पर वे प्रसिद्ध नहीं हुए। ये वास्तव में अपने महाभारत के लिए ही प्रसिद्ध हैं। इसमें यद्यपि भाषा का लालित्य या काव्य की छटा नहीं है पर सीधी सादी भाषामें कथा अच्छी तरह समझाई गई है। रचना का ढंग नीचे के अवतरण से विदित होगा,

अभिमनु धाइ खड़ग परिहारे।
भूरिश्रवा बान दस छाँटे।
तीन बान सारथि उर मारे।
सारथि जूझि गिरे मैदाना।
यहि अंतर सेना सब धाई।
रथ को खैंचि कुँवर कर लीन्हें।
अभिमनु कोपि खंभ परहारे।

अर्जुनसुत इमि मार किय महाबीर परचंड।
रूप भयानक देखियत जिमि जम लीन्हें दंड

3. वृंद, ये मेड़ता (जोधपुर) के रहनेवाले थे और कृष्णगढ़ नरेश महाराज राजसिंह के गुरु थे। संवत् 1761 में ये शायद कृष्णगढ़ नरेश के साथ औरंगजेब की फौज में ढाके तक गए थे। इनके वंशधर अब तक कृष्णगढ़ में वर्तमान हैं। इनकी 'वृंदसतसई' (संवत् 1761), जिसमें नीति के सात सौ दोहे हैं, बहुत प्रसिद्ध हैं। खोज में 'शृंगारशिक्षा' (संवत् 1748), और 'भावपंचाशिका' नाम की दो रससंबंधी पुस्तकें और मिली हैं, पर इनकी ख्याति अधिकतर सूक्तिकार के रूप में ही है। वृंदसतसई के कुछ दोहे नीचे दिए जाते हैं,

भले बुरे सब एक सम, जौ लौं बोलत नाहिं।
जान परत हैं काग पिक, ऋतु बसंत के माहिं
हितहू कौं कहिए न तेहि, जो नर होय अबोध।
ज्यों नकटे को आरसी, होत दिखाए क्रोध

4. छत्रासिंह कायस्थ, ये बटेश्वर क्षेत्र के अटेर नामक गाँव के रहने वाले श्रीवास्तव कायस्थ थे। इनके आश्रयदाता अमरावती के कोई कल्याणसिंह थे। इन्होंने 'विजयमुक्तावली' नाम की पुस्तक संवत् 1757 में लिखी जिसमें महाभारत की कथा एक स्वतंत्र प्रबंधकाव्य के रूप में कई छंदों में वर्णित है। पुस्तक में काव्य के गुण यथेष्ट परिमाण में हैं और कहीं कहीं की कविता बड़ी ही ओजस्विनी है। कुछ उदाहरण लीजिए,

निरखत ही अभिमन्यु को, बिदुर डुलायो सीस।
रच्छा बालक की करौ, ह्वै कृपाल जगदीस
आपुन काँधौं युद्ध नहिं, धानुष दियो भुव डारि।
पापी बैठे गेह कत, पांडुपुत्र तुम चारि
पौरुष तजि लज्जा तजी, तजी सकल कुलकानि।
बालक रनहिं पठाय कै, आपु रहे सुख मानि
कवच कुंडल इंद्र लीने बाण कुंती लै गई।
भई बैरिनि मेदिनी चित कर्ण के चिंताभई

5. बैताल ये जाति के बंदीजन थे और राजा विक्रमसाहि की सभा में रहते थे। यदि ये विक्रम सिंह चरखारी वाले प्रसिद्ध विक्रमसाहि ही हैं जिन्होंने 'विक्रम सतसई' आदि कई ग्रंथ लिखे हैं और जो खुमान, प्रताप कई

कवियों के आश्रयदाता थे, तो बैताल का समय संवत् 1839 और 1886 के बीच मानना पड़ेगा। पर शिवसिंह सरोज में इनका जन्मकाल संवत् 1734 लिखा हुआ है। बैताल ने गिरिधर राय के समान नीति की कुंडलियों की रचना की हैं और प्रत्येक कुंडलियाँ विक्रम को संबोधन करके कही हैं। इन्होंने लौकिक व्यवहार संबंधी अनेक विषयों पर सीधे सादे पर जोरदार पद्य कहे हैं। गिरिधर राय के समान इन्होंने भी वाक्चातुर्य या उपमा रूपक आदि लाने का प्रयत्न नहीं किया है। बिल्कुल सीधी सादी बात ज्यों की त्यों छंदोबद्ध कर दी गई है। फिर भी कथन के ढंग में अनूठापन है। एक कुंडलिया नीचे दी जाती है,

मरै बैल गरियार, मरै वह अड़ियल टट्टू।
मरै करकसा नारि, मरै वह खसम निखट्टू
बाम्हन सो मरि जाय, हाथ लै मदिरा प्यावै।
पूत वही मर जाय, जो कुल में दाग लगावै
अरु बेनियाव राजा मरै, तबै नींद भर सोइए।
बैताल कहै विक्रम सुनौ, एते मरे न रोइए।

6. आलम–ये जाति के ब्राह्मण थे, पर शेख नाम की रँगरेजिन के प्रेम में फँसकर पीछे से मुसलमान हो गए और उसके साथ विवाह करके रहने लगे। आलम को शेख से जहान नामक एक पुत्र भी हुआ। ये औरंगजेब के दूसरे बेटे मुअज्जम के आश्रय में रहते थे जो पीछे बहादुरशाह के नाम से गद्दी पर बैठा। अत: आलम का कविताकाल संवत् 1740, से संवत् 1760 तक माना जा सकता है। इनकी कविताओं का एक संग्रह 'आलमकेलि' के नाम से निकला है। इस पुस्तक में आए पद्यों के अतिरिक्त इनके और बहुत से सुंदर और उत्कृष्ट पद्य ग्रंथों में संगृहीत मिलते हैं और लोगों के मुँह से सुने जाते हैं।

शेख रँगरेजिन भी अच्छी कविता करती थी। आलम के साथ प्रेम होने की विचित्र कथा प्रसिद्ध है। कहते हैं कि आलम ने एक बार उसे पगड़ी रँगने को दी, जिसकी खूँट में भूल से कागज की एक चिट बँधी चली गई। उस चिट में दोहे की यह आधी पंक्ति लिखी थी 'कनक छरीसी कामिनी काहे को कटि छीन'। शेख ने दोहा इस तरह पूरा करके 'कटि को कंचन कटि बिधि कुचन मध्य धरि दीन', उस चिट को फिर ज्यों की त्यों पगड़ी की खूँट में बाँधकर लौटा दिया। उसी दिन से आलम शेख के पूरे प्रेमी हो गए और अंत में उसके

साथ विवाह भी कर लिया। शेख बहुत ही चतुर और हाजिरजवाब स्त्री थी। एक बार शाहजादा मुअज्जम ने हँसी में शेख से पूछा, 'क्या आलम की औरत आप ही हैं?' शेख ने चट उत्तर दिया कि 'हाँ, जहाँपनाह जहान की माँ मैं ही हूँ।' 'आलमकेलि' में बहुत से कवित्त शेख के रचे हुए हैं। आलम के कवित्त सवैयों में भी बहुत-सी रचना शेख की मानी जाती है। जैसे नीचे लिखे कवित्त में चौथा चरण शेख का बनाया कहा जाता है–

प्रेमरंग-पगे जगमगे जगे जामिनि के,
जोबन की जोति जगी जोर उमगत हैं।
मदन के माते मतवारे ऐसे घूमत हैं,
झूमत हैं झुकिझुकि झपि उघरत हैं
आलम सो नवल निकाई इन नैनन की,
पाँखुरी पदुम पै भँवर थिरकत हैं।
चाहत हैं उड़िबे को, देखत मयंकमुख,
जानत हैं रैनि तातें ताहि में रहत हैं।

आलम रीतिबद्ध रचना करने वाले कवि नहीं थे। ये प्रेमोन्मत्त कवि थे और अपनी तरंग के अनुसार रचना करते थे। इसी से इनकी रचनाओं में हृदयतत्त्व की प्रधानता है। 'प्रेम की पीर' या 'इश्क का दर्द' इनके एक-एक वाक्य में भरा पाया जाता है। उत्प्रेक्षाएँ भी इन्होंने बड़ी अनूठी और बहुत अधिक कही हैं। शब्द वैचित्रय, अनुप्रास आदि की प्रवृत्ति इनमें विशेष रूप से कहीं नहीं पाई जाती। शृंगार रस की ऐसी उन्मादमयी उक्तियाँ इनकी रचना में मिलती हैं कि पढ़ने और सुनने वाले लीन हो जाते हैं। यह तन्मयता सच्ची उमंग में ही सम्भव है। रेखता या उर्दू भाषा में भी इन्होंने कवित्त कहे हैं। भाषा भी इस कवि की परिमार्जित और सुव्यवस्थित है पर उसमें कहीं-कहीं 'कीन, दीन, जीन' आदि अवधी या पूरबी हिन्दी के प्रयोग भी मिलते हैं। कहींकहीं फारसी की शैली के रसबाधक भाव भी इनमें मिलते हैं। प्रेम की तन्मयता की दृष्टि से आलम की गणना 'रसखान' और 'घनानंद' की कोटि में ही होनी चाहिए। इनकी कविता के कुछ नमूने नीचे दिए जाते हैं,

जा थल कीने बिहार अनेकन ता थल काँकरी बैठि चुन्यो करैं।
जा रसना सों करी बहु बातन ता रसना सों चरित्र गुन्यो करैं।
आलम जौन से कुंजन में करी केलि तहाँ अब सीस धुन्यो करैं।
नैनन में जे सदा रहते तिनकी अब कान कहानी सुन्यो करैं।

कैधौं मोर सोर तजि गए री अनत भाजि,
कैधौं उत दादुर न बोलत हैं, एदई।
कैधौं पिक चातक महीप काहू मारि डारे,
कैधौं बगपाँति उत अंतगति ह्वै गई?
आलम कहै, आली! अजहूँ न आए प्यारे,
कैधौं उत रीत विपरीत बिधि ने ठई?
मदन महीप की दुहाई फिरिबे ते रही,
जूझि गये मेघ, कैधौं बीजुरी सती भई?
रात कें उनींदे अरसाते, मदमाते राते,
अति कजरारे दृग तेरे यों सुहात हैं।
तीखी तीखी कोरनि करोरि लेत काढ़े जीउ,
केते भए घायल औ केते तलफात हैं
ज्यों ज्यों लै सलिल चख 'सेख' धोवै बार बार,
त्यों त्यों बल बुंदन के बार झुकि जात हैं।
कैबर के भाले, कैधौं नाहर नहनवाले,
लोहू के पियासे कहूँ पानी तें अघात हैं?
दाने की न पानी की, न आवै सुधा खाने की,
याँ गली महबूब की अराम खुसखाना है।
रोज ही से है, जो राजी यार की रजाय बीच,
नाज की नजर तेज तीर का निशाना है
सूरत चिराग रोसनाई आसनाई बीच,
बार बार बरै बलि जैसे परवाना है।
दिल से दिलासा दीजै हाल के न ख्याल हूजै,
बेखुद फकीर, वह आशिक दिवाना है

7. गुरु गोविंदसिंह जी–ये सिक्खों के महापराक्रमी दसवें या अंतिम गुरु थे। इनका जन्म संवत् 1723 में और सत्यलोकवास संवत् 1765 में हुआ। यद्यपि सब गुरुओं ने थोड़े बहुत पद, भजन आदि बनाए हैं, पर ये महाराज काव्य के अच्छे ज्ञाता और ग्रंथकार थे। सिखों में शास्त्रज्ञान का अभाव इन्हें बहुत खटका था और इन्होंने बहुत से सिखों को व्याकरण, साहित्य, दर्शन आदि के अध्ययन के लिए काशी भेजा था। ये हिंदू भावों और आर्य संस्कृति की रक्षा के लिए बराबर युद्ध करते रहे। 'तिलक' और 'जनेऊ'

की रक्षा में इनकी तलवार सदा खुली रहती थी। यद्यपि सिख संप्रदाय की निर्गुण उपासना है, पर सगुण स्वरूप के प्रति इन्होंने पूरी आस्था प्रकट की है और देवकथाओं की चर्चा बड़े भक्तिभाव से की है। यह बात प्रसिद्ध है कि ये शक्ति के आराधक थे। इनके इस पूर्ण हिंदू भाव को देखने से यह बात समझ में नहीं आती कि वर्तमान समय में सिखों की एक शाखा विशेष के भीतर पैगंबरी मजहबों का कट्टरपन कहाँ से और किसकी प्रेरणा से आ घुसा है।

इन्होंने हिन्दी में कई अच्छे और साहित्यिक ग्रंथों की रचना की है जिनमें से कुछ के नाम ये हैं, सुनीतिप्रकाश, सर्वलोहप्रकाश, प्रेमसुमार्ग, बुद्धि सागर और चंडीचरित्र। चंडीचरित्र की रचना पद्धति बड़ी ही ओजस्विनी है। ये प्रौढ़ साहित्यिक ब्रजभाषा लिखते थे। चंडीचरित्र की दुर्गासप्तशती की कथा बड़ी सुंदर कविता में कही गई है। इनकी रचना के उदाहरण नीचे दिए जाते हैं,

निर्जर निरूप हौ, कि सुंदर सरूप हौ,
कि भूपन के भूप हौ, कि दानी महादान हौ?
प्रान के बचौया, दूध-पूत के देवैया,
रोग-सोग के मिटैया, किधौं मानी महामान हौ?
विद्या के विचार हौ, कि अद्वैत अवतार हौ,
कि सुद्धता की मूर्ति हौ कि सिद्ध ता की सान हौ?
जोबन के जाल हौ, कि कालहू के काल हौ,
कि सत्रुन के साल हौ कि मित्रन के प्रान हौ?

8. श्रीधर या मुरलीधर, ये प्रयाग के रहने वाले थे। इन्होंने कई पुस्तकें लिखीं और बहुत सी फुटकल कविता बनाई। संगीत की पुस्तक, नायिकाभेद, जैन मुनियों के चरित्र, कृष्णलीला के फुटकल पद्य, चित्रकाव्य इत्यादि के अतिरिक्त इन्होंने 'जंगनामा' नामक ऐतिहासिक प्रबंध काव्य लिखा जिसमें फर्रुखसियर और जहाँदारशाह के युद्ध का वर्णन है। यह ग्रंथ काशी नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित हो चुका है। इस छोटी सी पुस्तक में सेना की चढ़ाई, साज सामान आदि का कवित्त सवैया में अच्छा वर्णन है। इनका कविताकाल संवत् 1767 के आसपास माना जा सकता है। 'जंगनामा' का एक कवित्त नीचे दिया जाता है,

इत गलगाजि चढयो फर्रुखसियर साह,
उत मौजदीन करी भारी भट भरती।

तोप की डकारनि सों बीर हहकारनि सों,
धौंसे की धुकारनि धामकि उठी धारती
श्रीधार नवाब फरजंदखाँ सुजंग जुरे,
जोगिनी अघाई जुग जुगन की बरती।
हहरयो हरौल, भीर गोल पै परी ही, तू न,
करतो हरौली तौ हरौले भीर परती

9. लाल कवि, इनका नाम गोरे लाल पुरोहित था और ये मऊ (बुंदेलखंड) के रहनेवाले थे। इन्होंने प्रसिद्ध महाराज छत्रसाल की आज्ञा से उनका जीवनचरित दोहों चौपाइयों में बड़े ब्योरे के साथ वर्णन किया है। इस पुस्तक में छत्रसाल का संवत् 1764 तक का ही वृत्तांत आया है। इससे अनुमान होता है कि या तो यह ग्रंथ अधूरा ही मिला है अथवा लाल कवि का परलोकवास छत्रसाल के पूर्व ही हो गया था। जो कुछ हो इतिहास की दृष्टि से 'छत्रप्रकाश' बड़े महत्त्व की पुस्तक है। इसमें सब घटनाएँ सच्ची और सब ब्योरे ठीक ठीक दिए गए हैं। इसमें वर्णित घटनाएँ और संवत् आदि ऐतिहासिक खोज के अनुसार बिल्कुल ठीक हैं, यहाँ तक कि जिस युद्ध में छत्रसाल को भागना पड़ा है उसका भी स्पष्ट उल्लेख किया गया है। यह ग्रंथ नागरीप्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित हो चुका है।

ग्रंथ की रचना प्रौढ़ और काव्यगुणयुक्त है। लाल कवि में प्रबंधपटुता पूरी थी। संबंध का निर्वाह भी अच्छा है और वर्णन विस्तार के लिए मार्मिक स्थलों का चुनाव भी। वस्तुपरिगणन द्वारा वर्णनों का अरुचिकर विस्तार बहुत ही कम मिलता है। सारांश यह कि लाल कवि का सा प्रबंध कौशल हिन्दी के कुछ इने गिने कवियों में ही पाया जाता है। शब्दवैचित्र्य और चमत्कार के फेर में इन्होंने कृत्रिमता कहीं से नहीं आने दी है। भावों का उत्कर्ष जहाँ दिखाना हुआ है, वहाँ भी कवि ने सीधी और स्वाभाविक उक्तियों का ही समावेश किया है, न तो कल्पना की उड़ान दिखाई है और न ऊहा की जटिलता। देश की दशा की ओर भी कवि का पूरा ध्यान जान पड़ता है। शिवाजी का जो वीरव्रत था वही छत्रसाल का भी था। छत्रसाल का जो भक्तिभाव शिवाजी पर कवि ने दिखाया है तथा दोनों के सम्मिलन का जो दृश्य खींचा है, दोनों इस संबंध में ध्यान देने योग्य हैं।

'छत्रप्रकाश' में लाल कवि ने बुंदेल वंश की उत्पत्ति, चंपतराय के विजयवृत्तांत, उनके उद्योग और पराक्रम, चंपतराय के अंतिम दिनों में उनके राज्य का उद्धार, फिर क्रमशः विजय पर विजय प्राप्त करते हुए मुगलों का नाकोंदम

करना इत्यादि बातोंका विस्तार से वर्णन किया है। काव्य और इतिहास दोनों की दृष्टि से यह ग्रंथ हिन्दी में अपने ढंग का अनूठा है। लाल कवि का एक और ग्रंथ 'विष्णुविलास' है जिसमें बरवै छंद में नायिकाभेद कहा गया है। पर इस कवि की कीर्ति का स्तंभ श्छत्रप्रकाश' ही है।

'छत्रप्रकाश' से नीचे कुछ पद्य उद्धृत किए जाते हैं,

(छत्रसाल प्रशंसा)

लखत पुरुष लच्छन सब जाने।
सतकबि कबित सुनत रस पागे।
रुचि सो लखत तुरंग जो नीके।
चौंकि चौंकि सब दिसि उठै सूबा खान खुमान।
अब धौं धावै कौन पर छत्रसाल बलवान

(युद्ध वर्णन)

छत्रसाल हाड़ा तहँ आयो।
भयो हरौल बजाय नगारो।
दौरि देस मुगलन के मारौ।
एक आन शिवराज निबाही।
आठ पातसाही झकझोरे।
काटि कटक किरबान बल, बाँटि जंबुकनि देहु।
ठाटि युद्ध यहि रीति सों, बाँटि धारनि धारि लेहु
चहुँ ओर सों सूबनि घेरो।
पजरे सहर साहि के बाँके।
कबहूँ प्रगटि युद्ध में हाँके।
बानन बरखि गयंदन फोरै।
कबहूँ उमड़ि अचानक आवै।
कबहूँ हाँकि हरौलन कूटै।
कबहूँ देस दौरि कै लावै।

10. घनआनंद–ये साक्षात् रस मूर्ति और ब्रजभाषा काव्य के प्रधान स्तंभों में हैं। इनका जन्म संवत् 1746 के लगभग हुआ था और ये संवत् 1796 में नादिरशाही कत्ले आम में मारे गए। ये जाति के कायस्थ और दिल्ली के बादशाह मुहम्मदशाह के मीर मुंशी थे। कहते हैं कि एक दिन दरबार में कुछ कुचक्रियों ने बादशाह से कहा कि मीर मुंशी साहब गाते बहुत अच्छा

हैं। बादशाह से इन्होंने बहुत टालमटोल किया। इस पर लोगों ने कहा कि ये इस तरह न गाएँगे, यदि इनकी प्रेमिका सुजान नाम की वेश्या कहे तब गाएँगे। वेश्या बुलाई गई। इन्होंने उसकी ओर मुँह और बादशाह की ओर पीठ करके ऐसा गाना गाया कि सब लोग तन्मय हो गए। बादशाह इनके गाने पर जितना खुश हुआ उतना ही बेअदबी पर नाराज। उसने इन्हें शहर से निकाल दिया। जब ये चलने लगे तब सुजान से भी साथ चलने को कहा पर वह न गई। इस पर इन्हें विराग उत्पन्न हो गया और ये वृंदावन जाकर निंबार्क संप्रदाय के वैष्णव हो गए और वहीं पूर्ण विरक्त भाव से रहने लगे। वृंदावन भूमि का प्रेम इनके इस कवित्त से झलकता है,

गुरनि बतायो, राधा मोहन हू गायो सदा,
सुखद सुहायो वृंदावन गाढ़े गहि रे।
अद्‌भुत अभूत महिमंडन, परे तें परे,
जीवन को लाहु हा हा क्यों न ताहि लहिरे
आनंद को घन छायो रहत निरंतर ही,
सरस सुदेस सो, पपीहापन बहि रे।
जमुना के तीर केलि कोलाहल भीर ऐसी,
पावन पुलिन पै पतित परि रहि रे

संवत् 1796 में जब नादिरशाह की सेना के सिपाही मथुरा तक आ पहुँचे तब कुछ लोगों ने उनसे कह दिया कि वृंदावन में बादशाह का मीर मुंशी रहता है, उसके पास बहुत कुछ माल होगा। सिपाहियों ने इन्हें आ घेरा और 'जर, जर, जर' (अर्थात् धन, धन, धन लाओ) चिल्लाने लगे। घनानंद जी ने शब्द को उलटकर 'रज रज रज' कह कर तीन मुट्ठी वृंदावन की धूल उन पर फेंक दी। उनके पास सिवा इसके और था ही क्या? सैनिकों ने क्रोध में आकर इनका हाथ काट डाला। कहते हैं कि मरते समय इन्होंने अपने रक्त से यह कवित्त लिखा था,

बहुत दिनान को अवधि आसपास परे,
खरे अरबरन भरे हैं उठि जान को।
कहि कहि आवन छबीले मनभावन को,
गहि गहि राखति ही दै दै सनमान को
झूठी बतियानि को पत्यानि तें उदास ह्वै के,
अब ना घिरत घन आनंद निदान को।

अधर लगे हैं आनि करि कै पयान प्रान,
चाहत चलन ये सँदेसो लै सुजान को।

घनआनंदजी के इतने ग्रंथों का पता लगता है, सुजानसागर, विरहलीला, कोकसागर, रसकेलिवल्ली और कृपाकंद। इसके अतिरिक्त इनके कवित्त सवैयों के फुटकल संग्रह डेढ़ सौ से लेकर सवा चार सौ कवित्तों तक मिलते हैं, कृष्णभक्ति संबंधी इनका एक बहुत बड़ा ग्रंथ छत्रापुर के राजपुस्तकालय में है जिसमें प्रियाप्रसाद, ब्रजव्यवहार, वियोगवेली, कृपाकंदनिबंध, गिरिगाथा, भावनाप्रकाश, गोकुलविनोद, धामचमत्कार, कृष्णकौमुदी, नाममाधुरी, वृंदावनमुद्रा, प्रेमपत्रिका, रसबसंत इत्यादिअनेक विषय वर्णित हैं। इनकी 'विरहलीला' ब्रजभाषा में, पर फारसी के छंद में है।

इनकी सी विशुद्ध, सरस और शक्तिशालिनी ब्रजभाषा लिखने में और कोई कवि समर्थ नहीं हुआ। विशुद्धता के साथ प्रौढ़ता और माधुर्य भी अपूर्व ही है। विप्रलंभश्रृंगार ही अधिकतर इन्होंने लिखा है। ये वियोगश्रृंगार के प्रधान मुक्तक कवि हैं। श्प्रेम की पीर' ही को लेकर इनकी वाणी का प्रादुर्भाव हुआ। प्रेममार्ग का ऐसा प्रवीण और धीर पथिक तथा जबाँदानी का ऐसा दावा रखने वाला ब्रजभाषा का दूसरा कवि नहीं हुआ। अत: इनके संबंध में निम्नलिखित उक्ति बहुत ही संगत है,

नेही महा, ब्रजभाषाप्रवीन और सुंदरताहु के भेद को जानै।
योग वियोग की रीति में कोविद, भावना भेद स्वरूप को ठानै
चाह के रंग में भीज्यो हियो, बिछुरे मिले प्रीतम सांति न मानै।
भाषाप्रवीन, सुछंद सदा रहै सो घन जू के कबित्ता बखानै।

इन्होंने अपनी कविताओं में बराबर श्सुजान' को संबोधन किया है, जोश्रृंगार में नायक के लिए और भक्तिभाव में भगवान कृष्ण के लिए प्रयुक्त मानना चाहिए। कहते हैं कि इन्हें अपनी पूर्वप्रेयसी श्सुजान' का नाम इतना प्रिय था कि विरक्त होने पर भी इन्होंने उसे नहीं छोड़ा। यद्यपि अपने पिछले जीवन में घनानंद विरक्त भक्त के रूप में वृंदावन जा रहे, पर इनकी अधिकांश कविता भक्तिभाव की कोटि में नहीं आएगी,श्रृंगार की ही कही जाएगी। लौकिक प्रेम की दीक्षा पाकर ही ये पीछे भगवत्प्रेम में लीन हुए। कविता इनकी भावपक्ष प्रधान है। कोरे विभावपक्ष का चित्रण इनमें कम मिलता है। जहाँ रूप छटा का वर्णन इन्होंने किया भी है वहाँ उसके प्रभाव का ही वर्णन मुख्य है। इनकी वाणी की प्रवृत्ति अंतर्वृत्ति निरूपण की ओर ही विशेष रहने के कारण बाह्यार्थ निरूपक रचना कम

मिलती है। होली के उत्सव, मार्ग में नायक नायिका की भेंट, उनकी रमणीय चेष्टाओं आदि के वर्णन के रूप में ही वह पाई जाती है। संयोग का भी कहीं कहीं बाह्य वर्णन मिलता है, पर उसमें भी प्रधानता बाहरी व्यापारों की चेष्टाओं की नहीं है, हृदय के उल्लास और लीनता की ही है।

प्रेमदशा की व्यंजना ही इनका अपना क्षेत्र है। प्रेम की गूढ़ अंतर्दशा का उद्‌धाटन जैसा इनमें है वैसा हिन्दी के अन्यशृंगारी कवि में नहीं। इस दशा का पहला स्वरूप है हृदय या प्रेम का आधिापत्य और बुद्धि का अधीन पद, जैसा कि घनानंद ने कहाहै,

'रीझ सुजान सची पटरानी, बची बुधि बापुरी ह्वै करि दासी।'

प्रेमियों की मनोवृत्ति इस प्रकार की होती है कि वे प्रिय की कोई साधारण चेष्टा भी देखकर उसका अपनी ओर झुकाव मान लिया करते हैं और फूले फिरते हैं। इसका कैसा सुंदर आभास कवि ने नायिका के इस वचन द्वारा दिया है, जो मन को संबोधन करके कहा गया है,

'रुचि के वे राजा जान प्यारे हैं आनंदघन,
होत कहा हेरे, रंक! मानि लीनो मेल सो'

कवियों की इसी अंतर्दृष्टि की ओर लक्ष्य करके एक प्रसिद्ध मनस्तत्त्ववेत्ता ने कहा है कि भावों या मनोविकारों के स्वरूप परिचय के लिए कवियों की वाणी का अनुशीलन जितना उपयोगी है उतना मनोविज्ञानियों के निरूपण का नहीं।

प्रेम की अनिर्वचनीयता का आभास घनानंद ने विरोधाभासों के द्वारा दिया है। उनके विरोधमूलक वैचित्र्य की प्रवृत्ति का कारण यही समझना चाहिए।

यद्यपि इन्होंने संयोग और वियोग दोनों पक्षों को लिया है, पर वियोग की अंतर्दशाओं की ओर दृष्टि अधिक है। इसी से इनके वियोग संबंधी पद्य प्रसिद्ध हैं। वियोगवर्णन भी अधिकतर अंतर्वृत्तिनिरूपक हैं, बाह्यार्थ निरूपक नहीं। घनानंद ने न तो बिहारी की तरह विरहताप को बाहरी माप से मापा है, न बाहरी उछलकूद दिखाई है। जो कुछ हलचल है वह भीतर की है, बाहर से यह वियोग प्रशांत और गंभीर है, न उसमें करवटें बदलना है, न सेज का आग की तरह तपना है, न उछल-उछल कर भागना है। उनकी 'मौनमधि पुकार' है।

यह निस्संकोच कहा जा सकता है कि भाषा पर जैसा अचूक अधिकार इनका था वैसा और किसी कवि का नहीं। भाषा मानो इनके हृदय के साथ जुड़कर ऐसी वशवर्तिनी हो गई थी कि ये उसे अपनी अनूठी भावभंगी के साथ

साथ जिस रूप में चाहते थे उस रूप में मोड़ सकते थे। उनके हृदय का योग पाकर भाषा की नूतन गतिविधि का अभ्यास हुआ और वह पहले से कहीं अधिक बलवती दिखाई पड़ी। जब आवश्यकता होती थी तब ये उसे बँधी प्रणाली पर से हटाकर अपनी नई प्रणाली पर ले जाते थे। भाषा की पूर्व अर्जित शक्ति से ही काम न चलाकर इन्होंने उसे अपनी ओर से नई शक्ति प्रदान की है। घनानंद जी उन विरले कवियों में हैं, जो भाषा की व्यंजकता बढ़ाते हैं। अपनी भावनाओं के अनूठे रूपरंग की व्यंजना के लिए भाषा का ऐसा बेधाड़क प्रयोग करने वाला हिन्दी के पुराने कवियों में दूसरा नहीं हुआ। भाषा के लक्षक और व्यंजक बल की सीमा कहाँ तक है, इसकी पूरी परख इन्हीं को थी।

लक्षणा का विस्तृत मैदान खुला रहने पर भी हिन्दी कवियों ने उसके भीतर बहुत ही कम पैर बढ़ाया। एक घनानंद ही ऐसे कवि हुए हैं जिन्होंने इस क्षेत्र में अच्छी दौड़ लगाई। लाक्षणिक मूर्तिमत्ता और प्रयोगवैचित्र्य की जो छटा इनमें दिखाई पड़ी, खेद है कि वह फिर पौने दो सौ वर्ष पीछे जाकर आधुनिककाल के उत्तरार्ध में, अर्थात् वर्तमानकाल की नूतन काव्यधारा में ही, 'अभिव्यंजनावाद' के प्रभाव से कुछ विदेशी रंग लिए प्रकट हुई। घनानंद का प्रयोग वैचित्र्य दिखाने के लिए कुछ पंक्तियाँ नीचे उद्धृत की जाती हैं,

(क) अरसानि गही वह बानि कछू, सरसानि सो आनि निहोरत है।

(ख) ह्वै है सोऊ घरी भाग उघरी अनंदघन सुरस बरसि, लाल! देखिहौ हरी हमें!
('खुले भाग्यवाली घड़ी' में विशेषण-विपर्यय)।

(ग) उघरो जग, छाय रहे घन आनंद, चातक ज्यों तकिए अब तौ। (उघरो जग=संसार जो चारों ओर घेरे था वह दृष्टि से हट गया)।

(घ) कहिए सु कहा, अब मौन भली, नहिं खोवते जौ हमें पावते जू। (हमें=हमारा हृदय) विरोधमूलक वैचित्रय भी जगह जगह बहुत सुंदर मिलता है, जैसे,

(च) झूठ की सचाई छाक्यौ, त्यों हित कचाई पाक्यो, ताके गुनगन घनआनंद कहा गनौ।

(छ) उजरनि बसी है हमारी अंखियानि देखो, सुबस सुदेस जहाँ रावरे बसत हो।

(ज) गति सुनि हारी, देखि थकनि मैं चली जाति, थिर चर दसा कैसी ढकी उघरति है।`

(झ) तेरे ज्यों न लेखो, मोहि मारत परेखो महा, जान घनआनंद पे खोयबो लहत हैं।

इन उद्धरणों से कवि की चुभती हुई वचनवक्रता पूरी पूरी झलकती है। कहने की आवश्यकता नहीं कि कवि की उक्ति ने वक्र पथ हृदय के वेग के कारण पकड़ा है।

भाव का स्रोत जिस प्रकार टकराकर कहीं कहीं वक्रोक्ति के छींटे फेंकता है उसी प्रकार कहीं कहीं भाषा के स्निग्ध, सरल और चलते प्रवाह के रूप में भी प्रकट होता है। ऐसे स्थलों पर अत्यंत चलती और प्रांजल ब्रजभाषा की रमणीयता दिखाई पड़ती है,

कान्ह परे बहुतायत में, इकलैन की वेदन जानौ कहा तुम?
हौ मनमोहन, मोहे कहूँ न, बिथा बिमनैन की मानौ कहा तुम?
बौरे बियोगिन्ह आप सुजान ह्वै, हाय कछू उर आनौ कहा तुम?
आरतिवंत पपीहन को घनआनंद जू! पहिचानो कहा तुम?
कारी कूर कोकिला कहाँ को बैर काढ़ति री,
कूकि-कूकि अबही करेजो किन कोरि रै।
पैंड़ परै पापी ये कलापी निसिौस ज्यों ही,
चातक रे घातक ह्वै तुहू कान फोरि लै
आनंद के घन प्रान जीवन सुजान बिना,
जानि कै अकेली सब घेरो दल जोरि लै।
जौ लौं करै आवन विनोद बरसावन वे,
तौ लौं रे डरारे बजमारे घन घोरि लै

इस प्रकार की सरल रचनाओं में कहीं कहीं नाद व्यंजना भी बड़ी अनूठी है। एक उदाहरण लीजिए,

ए रे बीर पौन! तेरो सबै ओर गौन, वारि
तो सों और कौन मनै ढरकौं ही बानि दै।
जगत के प्रान, ओछे बड़े को समान, घन
आनंदनिधान सुखदान दुखियानि दै
जान उजियारे, गुनभारे अति मोहि प्यारे
अब ह्वै अमोही बैठे पीठि पहिचानि दै।
बिरहबिथा की मूरि आँखिन में राखौं पूरि,
धूरि तिन्ह पाँयन की हा हा! नैकु आनि दै

ऊपर के कवित्त के दूसरे चरण में आए हुए 'आनंदनिधान सुखदान दुखियानि दै' में मृदंग की ध्वनि का बड़ा ही सुंदर अनुकरण है।

उक्ति का अर्थगर्भत्व भी घनानंद का स्वतंत्र और स्वावलंबी होता है, बिहारी के दोहों के समान साहित्य की रूढ़ियों (जैसे, नायिकाभेद) पर आश्रित नहीं रहता। उक्तियों की सांगोपांग योजना या अन्विति इनकी निराली होती है। कुछ उदाहरण लीजिए–

पूरन प्रेम को मंत्र महा पन जा मधि सोधि सुधारि है लेख्यो।
ताही के चारु चरित्र विचित्रनि यों पचि कै रचि राखि बिसेख्यो
ऐसो हियो हित पत्र पवित्र जो आन कथा न कहूँ अवरेख्यो।
सो घनआनंद जान अजान लौं टूक कियो, पर बाँचि न देख्यो

आनाकानी आरसी निहारिबो करौगे कौलौं?
कहा मो चकित दसा त्यों न दीठि डोलिहै?
मौन हू सों देखिहौं कितेक पन पालिहौ जू,
कूकभरी मूकता बुलाय आप बोलिहै
जान घनआनंद यों मोहि तुम्हें पैज परी,
जानियैगो टेक टरें कौन धौं मलोलिहै।
रुई दिए रहौगे कहाँ लौं बहरायबे की?
कबहूँ तौ मेरियै पुकार कान खोलिहै

अंतर में बासी पै प्रवासी कैसो अंतर है,
मेरी न सुनत दैया! आपनीयौ ना कहौ।
लोचननि तारे ह्वै सुझायो सब, सूझौ नाँहिं,
बूझि न परति ऐसी सोचनि कहा दहौ
हौ तौ जानराय, जाने जाहु न, अजान यातें,
आनंद के घन छाया छाय उघरे रहौ।
मूरति मया की हा हा! सूरति दिखैये नेकु,
हमैं खोय या बिधि हो! कौन धौं लहालहौ

मूरति सिंगार की उजारी छबि आछी भाँति,
दीठि लालसा के लोयननि लैलै आँजिहौं।
रतिरसना सवाद पाँवड़े पुनीतकारी पाय,
चूमि चूमि कै कपोलनि सों माँजिहौं
जान प्यारे प्रान अंग अंग रुचि रंगिन में,

बोरि सब अंगन अनंग दुख भाँजिहौं।
कब घनआनंद ढरौही बानि देखें,
सुधा हेत मनघट दरकनि सुठि राँजिहौं
(राँजना, फूटे बरतन में जोड़ या टाँका लगाना)।
निसिोंस खरी उर माँझ अरी छबि रंगभरी मुरि चाहनि की।
तकि मोरनि त्यों चख ढोरि रहैं, ढरिगो हिय ढोरनि बाहनिकी
चट दै कटि पै बट प्रान गए गति सों मति में अवगाहनि की।
घनआनंद जान लख्यो जब तें जक लागियै मोहि कराहनि की

इस अंतिम सवैये के प्रथम तीन चरणों में कवि ने बहुत सूक्ष्म कौशल दिखाया है। 'मुरि चाहनि' और 'तकि मोरनि' से यह व्यक्त किया गया है कि एक बार नायक ने नायिका की ओर मुड़कर देखा फिर देखकर मुड़ गए और अपना रास्ता पकड़ा। देखकर जब वे मुड़े तब नायिका का मन उनकी ओर इस प्रकार ढल पड़ा जैसे पानी नारी में ढल जाता है। कटि में बल देकर प्यारे नायिका के मन में डूबने के भय से निकल गए।

घनानंद के ये दो सवैये बहुत प्रसिद्ध हैं,
परकारज देह को धारे फिरौ परजन्य! जथारथ ह्वै दरसौ।
निधि नीर सुधा के समान करौ, सबही बिधि सुंदरता सरसौ
घनआनंद जीवनदायक हो, कबौं मेरियौ पीर हिये परसौ।
कबहूँ वा बिसासी सुजान के आँगन में अंसुवान को लै बरसौ
अति सूधो सनेह को मारग है, जहँ नैकु सयानप बाँक नहीं।
तहँ साँचे चलै तजि आपनपौ, झिझकैं कपटी जो निसाँक नहीं
घनआनंद प्यारे सुजान सुनौ, इत एक तें दूसरो आँक नहीं।
तुम कौन सी पाटी पढ़े हौ लला, मन लेहु पै देहु छटाँक नहीं
('विरहलीला' से)
सलोने स्याम प्यारे क्यों न आवौ।
कहाँ हौ जू, कहाँ हौ जू, कहाँ हौ।
रहौ किन प्रान प्यारे नैन आगैं।
सजन! हित मान कै ऐसी न कीजै।

काव्यगत विशेषताएँ

हिंदी के मध्यकालीन स्वच्छंद प्रवाह के प्रमुख कर्ताओं में सबसे अधिक साहित्यश्रुत घनआनंद ही प्रतीत होते है। इनकी रचना के दो प्रकार हैं: एक में

प्रेमसंवेदना की अभिव्यक्ति है, और दूसरे में भक्तिसंवेदना की व्यक्ति। इनकी रचना अभिधा के वाच्य रूप में कम, लक्षणा के लक्ष्य और व्यंजना के व्यंग्य रूप में अधिक है। ये भाषाप्रवीण भी थे और ब्रजभाषाप्रवीण भी। इन्होंने ब्रजभाषा के प्रयोगों के आधार पर नूतन वाग्योग संघटित किया है।

उनकी रचनाओं में प्रेम का अत्यंत गंभीर, निर्मल, आवेगमय और व्याकुल कर देने वाला उदात्त रूप व्यक्त हुआ है, इसीलिए घनानंद को 'साक्षात रसमूर्ति' कहा गया है। घनानंद के काव्य में भाव की जैसी गहराई है, वैसी ही कला की बारीकी भी। उनकी कविता में लाक्षणिकता, वक्रोक्ति, वाग्विदग्धता के साथ अलंकारों का कुशल प्रयोग भी मिलता है। उनकी काव्य-कला में सहजता के साथ वचन-वक्रता का अद्‌भुत मेल है। घनानंद की भाषा परिष्कृत और साहित्यिक ब्रजभाषा है। उसमें कोमलता और मधुरता का चरम विकास दिखाई देता है। भाषा की व्यंजकता बढ़ाने में वे अत्यंत कुशल थे। वस्तुतः वे ब्रजभाषा प्रवीण ही नहीं सर्जनात्मक काव्यभाषा के प्रणेता भी थे।

कलापक्ष

घनानंद भाषा के धनी थे। उन्होंने अपने काव्य में ब्रजभाषा का प्रयोग किया है। रीतिकाल की यही प्रमुख भाषा थी। इनकी ब्रजभाषा अरबी, फारसी, राजस्थानी, खड़ी बोली आदि के शब्दों से समृद्ध है। उन्होंने सरल-सहज लाक्षणिक व्यंजनापूर्ण भाषा का प्रयोग किया है। घनानंद ने लोकोक्तियों और मुहावरों के प्रयोग से भाषा सौंदर्य को चार चाँद लगा दिए हैं। घनानंद ने अपने काव्य में अलंकारो का प्रयोग अत्यंत सहज ढंग से किया है। उन्होंने काव्य में अनुप्रास, यमक, उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा एवं विरोधाभास आदि अलंकारो का प्रयोग बहुलता के साथ हुआ है। शविरोधाभास ' घनानंद का प्रिय अलंकर है। आचार्य विश्वनाथ ने उनके बारे में लिखा है-

विरोधाभास के अधिक प्रयोग से उनकी कविता भरी पड़ी है। जहाँ इस प्रकार की कृति दिखाई दे, उसे निःसंकोच इनकी कृति घोषित किया जा सकता है।

छंद-विधान

छंद-विधान की दृष्टि से घनानंद ने कवित्त और सवैये ही अधिक लिखे हैं। वैसे उन्होंने दोहे और चौपाइयां भी लिखी हैं। रस की दृष्टि से घनानंद का

काव्य मुख्यत:शृंगार रस प्रधान है। इनमें वियोगशृंगार की प्रधानता है। कहीं-कहीं शांत रस का प्रयोग भी देखते बनता है। घनानंद को भाषा में चित्रात्मकता और वाग्विदग्धता का गुण भी आ गया है।

कवित्त व सवैया

इन पदों में सुजान के प्रेम रूप विरह आदि का वर्णन हुआ है

नहिं आवनि-औधि, न रावरी आस,

इते पैर एक सी बाट चहों–

घनानंद नायिका सुजान का वर्णन अत्यंत रुचिपूर्वक करतें हैं। वे उस पर अपना सर्वस्व न्योछावर कर देतें हैं–

रावरे रूप की रीति अनूप नयो नयो लागत ज्यों ज्यों निहारिये।

त्यों इन आँखिन बानि अनोखी अघानि कहू नहिं आनि तिहारिये।

घनानंद प्रेम के मार्ग को अत्यंत सरल बताते हैं, इन में कहीं भी वक्रता नहीं है।

अति सूधो सनेह को मारग है, जहाँ नेकु सयानप बांक नहीं।

कवि अपनी प्रिया को अत्यधिक चतुराई दिखाने के लिए उलाहना भी देता है।

तुम कौन धौं पाटी पढ़े हौ कहौ मन लेहूं पै देहूं छटांक नहीं।

कवि अपनी प्रिया को प्रेम पत्र भी भिजवाता है पर उस निष्ठुर ने उसे पढ़कर देखा तक नहीं।

जान अजान लौं टूक कियौ पर बाँचि न देख्यो।

रूप सौंदर्य का वर्णन करने में कवि घनानंद का कोई सानी नहीं है। वह काली साड़ी में अपनी नायिका को देखकर उन्मत्त सा हो जातें हैं। साँवरी साड़ी ने सुजान के गोरे शरीर को कितना कांतिमान बना दिया हैं।

स्याम घटा लिपटी थिर बीज की सौहैं अमावस-अंक उजयारी।

धूम के पुंज में ज्वाल की माल पै द्विग-शीतलता-सुख-कारी।

कै छबि छायौ सिंगार निहारी सुजान-तिया-तन-दीपति-त्यारी।

कैसी फबी घनानन्द चोपनि सों पहिरी चुनी सावँरी सारी।

घनानंद के काव्य की एक प्रमुख विशेषता है- भाव प्रवणता के अनुरूप अभिव्यक्ति की स्वाभाविक वक्रता। घनानंद का प्रेम लौकिक प्रेम की भाव भूमि से उपर उठकर आलौकिक प्रेम की बुलंदियों को छुता हुआ नजर आता है, तब

कवि की प्रियासुजान ही परब्रह्म का रूप बन जाती है। ऐसी दशा में घनानंद प्रेम से उपर उठ कर भक्त बन जाते हैं।

नेही सिरमौर एक तुम ही लौं मेरी दौर
नहि और ठौर, काहि सांकरे समहारिये

कवित्त

बहुत दिनान को अवधि आसपास परे,
खरे अरबरनि भरे हैं उठी जान को।
कहि कहि आवन छबीले मनभावन को,
गहि गहि राखति ही दै दै सनमान को।
झूटी बतियानि की पतियानि तें उदास हैव कै,
अब न घिरत घन आनंद निदान को।
अधर लगे हैं आनि करि कै पयान प्रान,
चाहत चलन ये संदेसों लै सुजान को।

रीतिकालीन कवि– घनानंद

रीतिकाल में प्रमुख तीन काव्य धाराएँ थी- रीतिबद्ध, रीतिसिद्ध और रीतिमुक्त। कवि घनानंद रीतिमुक्त काव्यधारा के अग्रणी कवि थे। कवि के व्यक्तित्व और कृतित्त्व की रचना उनके कवित्व ने स्वयं ही की है-

"लोग हैं लागि कवित्त बनावत, मोहे तौ मेरे कवित्त बनावत"

अनुमान से इनका जन्म का समय संवत् 1730 के आसपास माना जाता है। इनका जन्म बुलंदशहर के एक कायस्थ परिवार में हुआ था। घनानंद युवावस्था में ही दिल्ली चले गए और अपनी प्रतिभा के बल पर मुगल सम्राट मुहम्मद शाह रंगीला के मीर मुंशी बन गए। घनानंद कविता में निपुण और सिद्ध संगीतकार थे। मुगल दरबार में इनका काफी सम्मान बढ़ गया था जिसके कारण अन्य दरबारी इनके विरोधी हो गए थे।

घनानंद 'स्वछंद मार्गी' प्रेमी कवि थे। प्रेम के कई रूप होते हैं,
नेह-छोटों के प्रति प्यार,
प्रीत-इश्क, मुहब्बत अपने बराबर वालों के साथ,
प्रेमी-प्रेमिका-पत्नी का संबंध,
श्रद्ध-भक्ति-ईश्वर के साथ प्रेम आदि।

प्रेम अमूर्त विषय है। इसे वाणी से नहीं भावों से ही अभिव्यक्त किया जा सकता है। हर व्यक्ति प्रेम का भूखा होता है। कवि घनानंद को भी मुगल दरबार की नर्तकी सुजान से प्रेम हो गया था। कवि ने सुजान के सौंदर्य के आधार पर सुन्दरता के अनेक दशाओं की व्यंजना की है। कवि अपनी नायिका की विशेषता बताते हुए कहते हैंदृ

रावरे रूप की रीति अनूप, नयो-नयो लागै ज्यों-ज्यों निहारियै।
त्यों इन आंखिन बानि अनोखी अधानि कहूँ नहिं आन तिहारिये।

कवि कहते हैं- प्रिय के सुन्दर रूप से प्रियतम को कभी भी तृप्ति नहीं मिलती है। वह जीतनी बार भी उसे देखता है उतनी बार उसे नई लगती है। जब से सुजान को घनानंद ने देखा है तब से उनकी आँखें किसी और को देखना ही नहीं चाहती है। उनके आँखों में सिर्फ सुजान ही बसी थी। घनानंद की कविता में सुजान की परम प्रेम की व्यख्या है। घनानंद स्वयं प्रेमी थे। उनका सुजान से गहरा और एक तरफा प्रेम था।

अति सूधो सनेह को मारण है, जहाँ नेकु सयानप बांक नहीं।
तहाँ सांचे चलै तजि आपनयौ झझकै कपटी जे निसांक नहीं।।

घनानंद की कविता का प्राण उनकी प्रेम की विरहानुभूति थी। घनानंद की कविता में प्रेम के पीर की अनेक रूप विधमान हैं। घनानंद के जीवन में प्रेम का स्थान बहुत ही ऊँचा था। उनका सम्पूर्ण जीवन काव्य प्रेम रुपी रस से ओत-प्रोत था। इनका प्रेम सामान्य नहीं उदात्त था। इन्होंने सुजान के पेशे से नहीं, सुजान से प्रेम किया था। घनानंद ने सुजान से नकारात्मक प्रतिक्रिया पाकर भी प्रेम करना नहीं छोड़ा बल्कि उन्होंने सुजान के प्रेम को अपनी रचनाओं में पिरोकर उसे और भी अमर बना दिया। प्रेम के मार्ग में इन्हें जो दुःख और पीड़ा मिली उससे वे निराश नहीं हुए बल्कि और भी उत्साह से प्रेम के पथ पर आगे बढ़ते चले गए। घनानंद ने अपने प्रेम को आध्यात्मिकता की पराकाष्ठा तक पंहुचा दिया। घनानंद ने जिस तरह प्रेम रूपी सागर में डूबकर सुजान से प्रेम किया उसी तरह आध्यात्म रूपी सागर में डूब कर भगवान श्री कृष्ण से भक्ति किया। घनानंद ने प्रेम और भक्ति के बीच की रेखाओं को मिटा दिया। इनका लौकिक प्रेम कब अध्यात्मिक प्रेम में बदल गया यह उन्हें भी नहीं पता चला। घनानंद को प्रेम में पीड़ा मिलती है लेकिन उस पीड़ा में ही वे आनंद का अनुभव करते हैं। प्रेम को ये साधना का दर्जा देते हैं तथा प्रेम के दोनों ही पक्षों (संयोग और वियोग) को सम्पूर्णता से अनुभव करते हैं। वे 'संयोग' का अनुभव जिस तन्मयता के साथ

करते हैं, 'वियोग' का भी अनुभव उसी तन्मयता के साथ करते हैं। घनानंद के प्रेम में पलायन का भाव कहीं भी नहीं मिलता है और न ही निराशा दिखाई देती है। प्रेम में विरह से पलायन के लिए मृत्यु का वरन करना तो इनकी दृष्टि में कायरता थी। इसीलिए घनानंद ने प्रेम के दो परम्परागत आदर्श के प्रतीक माने जाने वाले 'मछली' और 'पतंग' की भर्त्सना (फटकार) की है-

"हमें मरिबो बिसराम गनै वह तो बापुरो मीट तज्यौ तरसै।
वह रूप छठा न सहारि सकै यह तेज तवै चितवै बरसे।
घनआनंद कौन अनोखी दसा मतिआवरी बावरी ह्वै थरसै।
बिछुरे-मिले मीन-पतंग-दसा खा जो जिय की गति को परसै।।"

सुख हो या दु:ख, दोनों की तीव्र और अत्यधिक घनीभूत अनुभूति वर्णनातीत हो जाती है। घनानंद की प्रेमानुभूति भी ऐसी ही है जिससे इनकी कविताओं में काफी कुछ मौन से ही सम्प्रेषित हो जाता है। घनानंद की बात (काव्य का कथ्य) रूपी दुल्हन, ऊर रुपी भवन में मौन का घूँघट डालकर बैठी रहती है। कोई काव्य मर्मज्ञ 'सुजान' ही इसे प्राप्त कर सकता है।

"उर भौन में मौन को घूँघट कै दुरि बैठी बिराजत बात बनी।
मृदु मंजू पदार्थ-भूषन सों सुलसै हुलसै रस-रूप मनी।।"

घनानंद स्वयं अपने प्रिय को सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि मैं तुमसे कितना प्रेम करता हूँ इसे शब्दों में कैसे व्यक्त करूँ? मैं नहीं कर सकता हूँ तथा करने की आवश्यकता भी नहीं, क्योंकि तुम 'सुजान' हो। कुछ भी कह सकने में असमर्थ और चातक की भाँति बादल की ओर दृष्टि लगाये प्रिया का ध्यान सारे संसार से हटकर प्रिय की ओर ही लगा हुआ है।

"मन जैसे कछू तुम्हें चाहत है सु-बखनीयै कैसे सुजान ही हौ।
इन प्राननि एक सदा गति रावरे, बावरे लौं लगियै नित लौ।
बुधि और सुधि नैननि बैननि मैं करिबास निरंतर अंतर गौ।
उधरौ जग चाय रहे घनआनंद चातिक त्यौं तकिये अब तो।।

घनानद का प्रेम इसलिए भी अनोखा है क्योंकि इसमें इनका अथवा इनकी इच्छा का कोई महत्त्व नहीं है बल्कि इनका सारा हृदय-व्यापार ही इनके प्रिय पर केंद्रित है। प्रेम को सामान्यत: आग का दरिया आदि कहा गया है। स्वयं घनानंद के समकालीन कवि बोधा प्रेम के विषय में कहते हैं कि–

"यह प्रेम को पंथ कराल महा, तलवार की धार पे धावनों है।"

परन्तु इस मान्यता के विपरीत घनानंद ने कहा है–

"अति सूधो सनेह कर मारग है जहाँ नेकु सयानप बाँक नहीं।
तहाँ साँचे चलैं तजी आपुनपो झझकैं कपटी जे निसाँक नहीं।
घनआनंद प्यारे सुजान सुनौ आईटी एक ते दुसरो आँक नहीं।
तम कौन धौ पाटी पढ़े हो लला मन लेहु पाई देहु छटाँक नहीं।।"

घनान्द की प्रेमानुभूति अद्‌भुत है, अद्वितीय है। ऐसा इसलिए है क्योंकि ये उनकी स्वभुक्त अनुभूति है न की किताबी अथवा सुनी-सुनाई। इनका पूरा जीवन ही प्रेम को समर्पित है। इस तरह से प्रेम के सागर में डूब कर प्रेम करने वाले शायद ही मिले। इनकी प्रेमानुभूति इतनी विलक्षण थी कि कृष्ण और ब्रज-भूमि के कण-कण से इन्हें इतना प्रेम था कि ये ब्रज की रज में लोटते हुए मरना चाहते थे। कहा जाता है कि नादिरशाह के सैनिक जब इन्हें मारने लगे तब इन्होंने उनसे मुस्कुराते हुए कहा था कि वे उन्हें तड़पा-तड़पा कर धीरे-धीरे मारें ताकि वह ब्रज की रज-रज में भली-भांति लोट कर मरें। प्रेम की ऐसी विलक्षण अनुभूति दुर्लभ है।

घनानंद की विरहानुभूति– घनानंद विरह के कवि के रूप में प्रसिद्ध थे। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने भी इस सन्दर्भ में लिखा है वास्तव में इन्होंने संयोग के सुख को पूरी सम्पूर्णता के साथ भोगा है। संयोग की ये पूर्णता ही इनके वियोग वर्णन को प्रभावशाली बनाती है। संयोग में इन्हें जो तीव्र घनीभूत अनुभूति हुई उसी कारण इनका वियोग भी मर्मांतक सिद्ध हुआ। बिना संयोग के वियोग कैसे संभव है? संयोग के बिना वियोग के स्वर या तो काल्पनिक होंगे जो प्रभावहीन हो जाएँगे या फिर रहस्यात्मक। परन्तु घनाद के साथ ऐसा नहीं था। इसलिये इनका वियोग अधिक प्रभावी शाली और प्रसिद्ध था क्योंकि इनकी विरहानुभूति वास्तविक और लौकिक है। इन्होंने सुजान से खुलकर प्रेम किया, पूर्ण रूप से स्वतंत्र एवं स्वछंद होक। इसलिए इनकी विरहानुभूति भी बहुत ही मार्मिक हुई। इस तरह ये विरहानुभूति की विलक्षणता के हिंदी साहित्य में एकमात्र कवि हैं। अपनी विरह की रचनाओं से ये हिंदी साहित्य के किसी भी काल के अन्य कवियों से भारी पड़ते हैं। इस मामले में छायावादी कवि भी इनसे पिछड़ जाते हैं क्योंकि उनका संयोग अपने आप में अपूर्ण है। इनकी विरह-वेदना में ऐसी ताप है जिसके जिक्र भर से जीभ में छाले पड़ जाए और न कहें तो हृदय विरह वेदना को कैसे सहे?

हिय ही मढ़ी घुटी रहौं तो दुखी जिय क्यौं करी ताहि सहै ।
कहिये किहि भाँति दसा सजनि अति ताती कथा रास्नानि दहै।

घनान्द के जीवनवृत्त को देखकर यह स्पष्ट हो जाता है कि सुजान के व्यवहार से इनके हृदय को बड़ी ठेस पहुँची और ये ठेस इतनी मर्मान्तक सिद्ध हुई की इनके जीवन की दिशा ही बदल दी। वियोग के कारणों और रूपों की विवेचना करते हुए डॉ0 रामचन्द्र तिवारी ने अपने 'मध्ययुगीन काव्य साधना' नामक ग्रन्थ में लिखा है "इन सभी वियोगों में सबसे अधिकमर्मांतक विश्वासघात-जनित वियोग होता है। यह जीवन की धारा को बदल देता है। घनानंद का वियोग इसी कोटि का था। जिसने उनके जीवन की दिशा को ही बदल दिया। वेश्रृंगारी कवि से भक्त कवि हो गए।" घनानंद कभी भी सुजान की निष्ठुरता को भुला नहीं पाए थे। इनका हृदय सुजान से फट जाता है, परन्तु वे उससे घृणा नहीं करते हैं। घनानंद विरहानुभूति की ताप में तपते रहते हैं। सुजान से मिला अपकार और उसके बाद भी उसके प्रति इनका प्रेम तथा इनके व्यक्तिगत प्रेम का राधा-कृष्ण की प्रेम-मूर्ति में विलय हो जाना, ये सब मिलकर इनके काव्य को विलक्षणता प्रदान करते हैं।

"तुम ही गति हौ तुम ही माटी हौ तुमहि पति हौ अति दीनन की।
नित प्रीति करौ गुन-हीनन सौ यह रीती सुजान प्रवीनन की।
बरसौ घनआनंद जीवन को सरसौ सुधि चातक छीनन की।
मृदुतौ चित के पण पै द्रित के निधि हौ हित कै रचि मीनन की ।।"

प्रस्तुत पद में कृष्ण या सुजान को अलग करना दुष्कर है। घनानंद के वियोग सम्बन्धित पदों में इनके आत्मा की कातर ध्वनि सुनी जा सकती है। इनके पद ऐसे लगते हैं मानों सुजान के प्रति इनके सन्देश हों। ऐसा ही एक पद यहाँ दृष्टव्य है जिसमें निवेदन और उपालम्भ के स्वर कितने स्पष्ट हैं-

"पाहिले अपनाय सुजान सो, क्यौं फिरि तेह कै तोरियै जू।
निरधार आधार दै धार मझार दई गहि बाँह न बोरियै जू।
घनआनंद अपने चातिक को गन बंधी लै मोह न छोरियै जू
रस प्याय कै ज्वाय, बढ़ाय कै आस, बिसास में यौं बिस घोरियै जू।।"

घनानंद के अतीत की सुन्दर प्रेमानुभूति अब विरहानुभूति का शूल बनकर हृदय में धँस गई है। अतीत के संयोग की मधुर स्मृतियाँ विरहाग्नि में घृत का कार्य कर रहीं हैं। इसी सन्दर्भ का एक पद यहाँ दृष्टव्य है जिसमें एक रमणी अपने प्रिय को उसके अनीतिपूर्ण आचरण के लिए उपालम्भ देते हुए कहती है-

"क्यों हँसि हेरी हर्यो हियरा अरू क्यों हित कै चित चाह बधाई।
कहे को बोली सने बैननि चौननि मैं निसैन चढ़ाई ।

सो सुधि मो हिय में घनआनंद सालति क्यों हूँ काढ़ै न कढ़ाई।
मीत सुजान अनीति की पाटी इतै पै न जानिए कौन पढ़ाई।।"

वियोग में हृदय जलता है और आँखें बरसती है। इन आँखों को बरसना भी चाहिए क्योंकि इन्होंने ही तो प्रिय की सुन्दर छवि को हृदय तक पहुँचाया। हृदय का इसमें क्या दोष? पहले जो आँखें प्रिय की सुन्दर छवि को देख-देख कर प्रसन्न होती थी, तृप्त होती थी, वही आँखें अब दिन-रात अश्रु बहाती रहती है। आँखों की दीन दशा का घनानंद ने काफी अच्छा वर्णन किया है-

"जिनको नित नाइके निहारती ही तिनको रोवती हैं।
पल-पाँवड़े पायनी चायनी सौं अँसुवानि की धरणी हैं।
घनआनंद जान सजीवन को सपने बिन पाईए खोवति हैं।
न खुली-मुंदी जान परैं कछु थे दुखदाई जगे पर सोवती हैं।"

इस संसार में सच्चा प्रेम करने वाले स्नेही लोग बहुत ही कम हैं। जैसे ही दो प्रेमियों के बीच के प्रेम की सुगंध का आभास लोगों को मिलता है, वैसे ही लोग उनके विपरीत हो जाते हैं। माता-पिता, भाई-बंधु, नाते-रिश्तेदार आदि कोई भी साथ नहीं देता है। यह समाज तो सदा से प्रेम विरोधी रहा है पर शायद विधाता को भी सच्चे प्रेमियों से चिढ़ है, तभी तो वह वियोग की सेना सजाकर प्रेमी युगलों पर टूट पड़ता है

"इकतो जग मांझ सनेही कहाँ, पै कहूँ जो मिलाप की बास खिलै।
तिहि देखि सके न बड़ो विधि कूर, वियोग समाजहि साजि मिलै।"

11. रसनिधि-इनका नाम पृथ्वीसिंह था और ये दतिया के एक जमींदार थे। इनका संवत् 1717 तक वर्तमान रहना पाया जाता है। ये अच्छे कवि थे। इन्होंने बिहारी सतसई के अनुकरण पर 'रतनहजारा' नामक दोहों का एक ग्रंथ बनाया। कहीं कहीं तो बिहारी के वाक्य तक रख लिए हैं। इनके अतिरिक्त इन्होंने और भी बहुत से दोहे बनाए जिनका संग्रह बाबू जगन्नाथ प्रसाद (छत्रापुर) ने किया है। 'अरिल्ल और माँझों का संग्रह भी खोज में मिला है। येशृंगार रस के कवि थे। अपने दोहों में इन्होंने फारसी कविता के भाव भरने और चतुराई दिखाने का बहुत कुछ प्रयत्न किया है। फारसी की आशिकी कविता के शब्द भी इन्होंने इस परिमाण में कहीं कहीं रखे हैं कि सुकवि और साहित्यिक शिष्टता को आघात पहुँचाता है। पर जिस ढंग की कविता इन्होंने की है उसमें इन्हें सफलता हुई है। कुछ दोहे उद्धृत किए जाते हैं,

अद्‌भुत गति यहि प्रेम की, बैनन कही न जाय।
दरस भूख लागै दृगन, भूखहिं देत भगाय।
लेहु न मजनू गोर ढिग, कोऊ लैला नाम।
दरदवंत को नेकु तौ, लेन देहु बिसराम।
चतुर चितेरे तुव सबी लिखत न हिय ठहराय।
कलस छुवत कर आँगुरी कटी कटाछन जाय।
मनगयंद छबि मद छके तोरि जँजीर भगात।
हिय के झीने तार सों सहजै ही बँधि जात।

12. महाराज विश्वनाथ सिंह– ये रीवाँ के बड़े ही विद्यारसिक और भक्त नरेश तथा प्रसिद्ध कवि महाराज रघुराजसिंह के पिता थे। आप संवत् 1778 से लेकर 1797 तक रीवाँ की गद्दी पर रहे। ये जैसे भक्त थे वैसे ही विद्याव्यसनी तथा कवियों और विद्वानों के आश्रयदाता थे। काव्यरचना में भी ये सिद्ध हस्त थे। यह ठीक है कि इनके नाम से प्रख्यात बहुत से ग्रंथ दूसरे कवियों के रचे हैं पर इनकी रचनाएँ भी कम नहीं हैं। नीचे इनकी बनाई पुस्तकों के नाम दिए जाते हैं जिनसे विदित होगा कि कितने विषयों पर इन्होंने लिखा है,

(1) अष्टयाम आह्निक, (2) आनंदरघुनंदन (नाटक), (3) उत्तमकाव्यप्रकाश, (4) गीतारघुनंदन शतिका, (5) रामायण, (6) गीता रघुनंदन प्रामाणिक, (7) सर्वसंग्रह, (8) कबीर बीजक की टीका, (9) विनयपत्रिका की टीका, (10) रामचंद्र की सवारी, (11) भजन, (12) पदार्थ, (13) धानुर्विद्या, (14) आनंद रामायण, (15) परधर्म निर्णय, (16) शांतिशतक, (17) वेदांत पंचकशतिका, (18) गीतावली पूर्वार्धद, (19) धारुवाष्टक, (20) उत्तम नीतिचंद्रिका, (21) अबोधनीति, (22) पाखंड खंडिका, (23) आदिमंगल, (24) बसंत चौंतीसी, (25) चौरासी रमैनी, (26) ककहरा, (27) शब्द, (28) विश्वभोजनप्रसाद, (29) ध्यान मंजरी, (30) विश्वनाथ प्रकाश, (31) परमतत्त्व, (32) संगीत रघुनंदन इत्यादि।

यद्यपि ये रामोपासक थे, पर कुलपरंपरा के अनुसार निर्गुणसंत मत की बानी का भी आदर करते थे। कबीरदास के शिष्य धर्मदास का बांधावनरेश के यहाँ जाकर उपदेश सुनाना परंपरा से प्रसिद्ध है। 'ककहरा', 'शब्द', 'रमैनी' आदि उसी प्रभाव केग्रोतक हैं। पर इनकी साहित्यिक रचना प्रधानत: रामचरित संबंधिनी है। कबीर बीजक की टीका इन्होंने निर्गुणब्रह्म के स्थान पर सगुण राम पर घटाई

है। ब्रजभाषा में नाटक पहले पहल इन्होंने लिखा। इस दृष्टि से इनका 'आनंदरघुनंदन नाटक' विशेष महत्त्व की वस्तु है। भारतेंदु हरिश्चंद्र ने इसे हिन्दी का प्रथम नाटक माना है। यद्यपि इसमें पद्यों की प्रचुरता है, पर संवाद सब ब्रजभाषा गद्य में है, अंकविधान और पात्रविधान भी है। हिन्दी के प्रथम नाटककार के रूप में ये चिरस्मरणीय हैं।

इनकी कविता अधिकतर या तो वर्णनात्मक है अथवा उपदेशात्मक। भाषा स्पष्ट और परिमार्जित है। इनकी रचना के कुछ नमूने दिए जाते हैं,

भाइन भृत्यन विष्णु सो रैयत, भानु सो सत्रुन काल सो भावै।
सत्रु बली सों बचे करि बुद्धि औ अस्त्रा सों धर्म की रीति चलावै
जीतन को करै केते उपाय औ दीरघ दृष्टि सबै फल पावै।
भाखत है बिसुनाथ धा्रुवै नृप सो कबहूँ नहिं राज गँवावै
बाजि गज सोर रथ सुतूर कतार जेते,
प्यादे ऐंड़वारे जे सबीह सरदार के।
कुँवर छबीले जे रसीले राजबंस वारे,
सूर अनियारे अति प्यारे सरकार के,
केते जातिवारे, केते केते देसवारे,
जीव स्वान सिंह आदि सैलवारे जे सिकार के।
डंका की धुकार ह्वै सवार सबैं एक बार,
राजैं वार पार कार कोशलकुमार के।
उठौ कुँवर दोउ प्रान पियारे।
हिमरितु प्रात पाय सब मिटिगे नभसर पसरे पुहकर तारे।
जगवन महँ निकस्यो हरषित हिय बिचरन हेत दिवस मनियारो।
विश्वनाथ यह कौतुक निरखहु रविमनि दसहु दिसिन उजियारो।
करि जो कर में कयलास लियो कसिके अब नाक सिकोरतहै।
दइ तालन बीस भुजा झहराय झुको धानु को झकझोरत है।
तिल एक हलै न हलै पुहुमी रिसि पीसि के दाँतन तोरत है।
मन में यह ठीक भयो हमरे मद काको महेस न मोरत है।

13. भक्तवर नागरीदासजी– यद्यपि इस नाम से कई भक्त कवि ब्रज में हो गए, पर उनमें सबसे प्रसिद्ध कृष्णगढ़ नरेश महाराज सावंतसिंह जी हैं जिनका जन्म पौष कृष्ण 12 संवत् 1756 में हुआ था। ये बाल्यावस्था से ही बड़े शूरवीर थे। 13 वर्ष की अवस्था में इन्होंने बूँदी के हाड़ा जैत सिंह को मारा

था। संवत् 1804 में ये दिल्ली के शाही दरबार में थे। इसी बीच में इनके पिता महाराज राजसिंह का देहांत हुआ। बादशाह अहमदशाह ने इन्हें दिल्ली में ही कृष्णागढ़ राज्य का उत्तराधिकार दिया, पर जब ये कृष्णगढ़ पहुँचे, तब राज्य पर अपने भाई बहादुरसिंह का अधिकार पाया जो जोधपुर की सहायता से सिंहासन पर अधिकार कर बैठे थे। ये ब्रज की ओर लौट आए और मरहठों से सहायता लेकर इन्होंने अपने राज्य पर अधिकार किया। इस पर गृहकलह से इन्हें कुछ ऐसी विरक्ति हो गई कि ये सब छोड़-छाड़कर वृंदावन चले गए और वहाँ विरक्त भक्त के रूप में रहने लगे। अपनी उस समय की चित्तवृत्ति का उल्लेख इन्होंने इस प्रकार किया है,

जहाँ कलह तहँ सुख नहीं, कलह सुखन को सूल।
सबै कलह इक राज में, राज कलह को मूल।
कहा भयो नृप हू भए, ढोवत जग बेगार।
लेत न सुख हरि भक्ति को, सकल सुखन को सार।
मैं अपने मन मूढ़ तें, डरत रहत हौं हाय।
वृंदावन की ओर तें, मति कबहूँ फिर जाय।

वृंदावन पहुँचने पर वहाँ के भक्तों ने इनका बड़ा आदर किया। ये लिखते हैं कि पहले तो 'कृष्णगढ़ के राजा' यह व्यावहारिक नाम सुनकर वे कुछ उदासीन से रहे पर जब उन्होंने मेरे 'नागरीदास' (नागरी शब्द श्रीराधा के लिए आता है) नाम को सुना तब तो उन्होंने उठकर दोनों भुजाओं से मेरा आलिंगन किया।

सुनि व्यवहारिक नाम को ठाढ़े दूरि उदास।
दौरि मिले भरि नैन सुनि नाम नागरीदास।
इक मिलत भुजन भरि दौर दौर।
इक टेरि बुलावत और ठौर।

वृंदावन में उक्त समय बल्लभाचार्य जी की गद्दी की पाँचवीं पीढ़ी थी। वृंदावन से इन्हें इतना प्रेम था कि एक बार ये वृंदावन के उस पार जा पहुँचे। रात को जब यमुना के किनारे लौटकर आए तब वहाँ कोई नाव बेड़ा न था। वृंदावन का वियोग इन्हें इतना असह्य हो गया कि ये यमुना में कूद पड़े और तैरकर वृंदावन आए। इस घटना का उल्लेख इन्होंने इस प्रकार किया है,

देख्यो श्रीवृंदा बिपिन पार।
नहिं नाव, नाहिं कछु और दाव।
रहे बार लगन की लगै लाज।

यह चित्त माहिं करिकै विचार।

वृंदावन में इनके साथ इनकी उपपत्नी 'बणीठणीजी' भी रहती थीं, जो कविता भी करती थीं।

ये भक्त कवियों में बहुत ही प्रचुर कृति छोड़ गए हैं। इनका कविताकाल संवत 1780 से 1819 तक माना जा सकता है। इनका पहला ग्रंथ 'मनोरथमंजरी' संवत् 1780 में पूरा हुआ। इन्होंने संवत् 1814 में आश्विन शुक्ल 10 को राज्य पर अपने पुत्र सरदारसिंह जी को प्रतिष्ठित करके घरबार छोड़ा। इससे स्पष्ट है कि विरक्त होने के बहुत पहले ही ये कृष्णभक्ति और ब्रजलीला संबंधिनी बहुत सी पुस्तकें लिख चुके थे। कृष्णगढ़ में इनकी लिखी छोटी-बड़ी सब मिलाकर 73 पुस्तकें संग्रहीत हैं जिनके नाम ये हैं,

सिंगारसार, गोपीप्रेमप्रकाश (संवत् 1800), पदप्रसंगमाला, ब्रजबैकुंठ तुला, ब्रजसार (संवत् 1799), भोरलीला, प्रातरसमंजरी, बिहारचंद्रिका, (संवत् 1788), भोजनानंदाष्टक, जुगलरस माधुरी, फूलविलास, गोधान-आगमन दोहन, आनंदलग्नाष्टक, फागविलास, ग्रीष्मबिहार, पावसपचीसी, गोपीबैनविलास, रासरसलता, नैनरूपरस, शीतसागर, इश्कचमन, मजलिस मंडन, अरिल्लाष्टक, सदा की माँझ, वर्षा ऋतु की माँझ, होरी की माँझ, कृष्णजन्मोत्सव कवित्त, प्रियाजन्मोत्सव कवित्त, साँझी के कवित्त, रास के कवित्त, चाँदनी के कवित्त, दिवारी के कवित्त, गोवर्धनधारन के कवित्त, होरी के कवित्त, फागगोकुलाष्टक, हिंडोरा के कवित्त, वर्षा के कवित्त, भक्तिमगदीपिका (1802), तीर्थानंद (1810), फागबिहार (1808), बालविनोद, वनविनोद (1809), सुजानानंद (1810), भक्तिसार (1799), देहदशा, वैराग्यवल्ली, रसिकरत्नावली (1782), कलिवैराग्यवल्लरी (1795), अरिल्लपचीसी, छूटक विधि, पारायण विधि प्रकाश (1799), शिखनख, नखशिख छूटक कवित्त, चचरियाँ, रेखता, मनोरथमंजरी (1780), रामचरित्रमाला, पदप्रबोधमाला, जुगल भक्तिविनोद (1808) रसानुक्रम के दोहे, शरद की माँझ, साँझी फूल बीनन संवाद, वसंतवर्णन, रसानुक्रम के कवित्त, फाग खेलन समेतानुक्रम के कवित्त, निकुंजविलास (1794), गोविंद परिचयी, वनजन प्रशंसा, छूटक दोहा, उत्सवमाला, पदमुक्तावली।

इनके अतिरिक्त 'वैनविलास' और 'गुप्तरसप्रकाश' नाम की दो अप्राप्य पुस्तकें भी हैं। इस लंबी सूची को देखकर आश्चर्य करने के पहले पाठक को यह जान लेना चाहिए कि ये नाम भिन्न भिन्न प्रसंगों वा विषयों के कुछ पद्यों में वर्णनमात्र हैं, जिन्हें यदि एकत्र करें तो 5 या 7 अच्छे आकार की पुस्तकों

में आ जाएँगे। अत: ऊपर लिखे नामों को पुस्तकों के नाम न समझकर वर्णन के शीर्षकमात्र समझना चाहिए। इनमें से बहुतों को पाँच-पाँच, दस-दस, पचीस-पचीस, पद्य मात्र समझिए। कृष्णभक्त कवियों की अधिकांश रचनाएँ इसी ढंग की हैं। भक्तिकाल के इतने अधिक कवियों की कृष्णलीला संबंधिनी फुटकल उक्तियों से ऊबे हुए और केवल साहित्यिक दृष्टि रखने वाले पाठकों को नागरीदासजी की ये रचनाएँ अधिकांश में पिष्टपेषण सी प्रतीत होंगी। पर ये भक्त थे और साहित्यरचना की नवीनता आदि से कोई प्रयोजन नहीं रखते थे। फिर भी इनकी शैली और भावों में बहुत कुछ नवीनता और विशिष्टता है। कहीं-कहीं बड़े सुंदर भावों की व्यंजना इन्होंने की है। कालगति के अनुसार फारसी काव्य का आशिकी और सूफियाना रंग ढंग भी कहीं कहीं इन्होंने दिखाया है। इन्होंने गाने के पदों के अतिरिक्त कवित्त, सवैया, अरिल्ल, रोला आदि कई छंदों का व्यवहार किया है। भाषा भी सरस और चलती है विशेषत: पदों की। कवित्तों की भाषा में वह चलतापन नहीं है। कविता के नमूने नीचे देखिए,

(वैराग्यसागर से)

काहे को रे नाना मत सुनै तू पुरातन के,
तै ही कहा? तेरी मूढ़ गूढ़ मति पंग की।
वेद के विवादनि को पावैगो न पार कहूँ,
छाँड़ि देहु आस सब दान न्हान गंग की।
और सिद्धि सोधो अब, नागर, न सिद्ध कछू,
मानि लेहु मेरी कही वात्तरा सुढंग की।
जाइ ब्रज भोरे! कोरे मन को रँगाइ ले रे,
वृंदावन रेनु रची गौर स्याम रंग की।

(अरिल्ल)

अंतर कुटिल कठोर भरे अभिमान सों,
तिनके गृह नहिं रहैं संत सनमान सों,
उनकी संगति भूलि न कबहूँ जाइए,
ब्रजनागर नँदलाल सु निसिदिन गाइए।

(पद)

जौ मेरे तन होते दोय।
मैं काहू तें कछु नहिं कहतो, मोतें कछु कहतो नहिं कोय।
एक जो तन हरिविमुखन के सँग रहतो देस विदेस।

विविधा भाँति के जग दुख सुख जहँ, नहीं भक्ति लवलेस।
एक जौ तन सतसंग रंग रँगि रहतो अति सुखपूर।
जनम सफल करि लेतो ब्रज बसि जहँ ब्रज जीवन मूर।
द्वै तन बिन द्वै काज न ह्वै हैं, आयु तौ छिन छिन छीजै।
नागरिदास एक तन तें अब कहौ काह करि लीजै।
(मनोरथ मंजरी से)
चरन छिदत काँटेनि तें स्रवत रुधिर सुधि नाहिं।
पूछति हौं फिरि हौं भटू खग मृग तरु बन माहिं।
कबै झुकत मो ओर को ऐहैं मदगज चाल।
गरबाहीं दीने दोऊ प्रिया नवल नंदलाल।
(इश्क चमन से)
सब मजहब सब इल्म अरु सबै ऐश के स्वाद।
अरे इश्क के असर बिनु ये सबही बरबाद।
आया इश्क लपेट में, लागी चश्म चपेट।
सोई आया खलक में, और भरैं सब पेट।
(वर्षा के कवित्त से)
भादों की कारी अंधयारी निसा झुकि बादर मंद फुही बरसावै।
स्यामा जू आपनी ऊँची अटा पै छकी रसरीति मलारहि गावै
ता समै मोहन के दृग दूरि तें आतुर रूप की भीख यों पावै।
पौन मया करि घूँघट टारै, दया करि दामिनि दीप दिखावै

14. जोधाराजये– गौड़ ब्राह्मण बालकृष्ण के पुत्र थे। इन्होंने नीवँगढ़ (वर्तमान नीमराणा अलवर) के राजा चंद्रभान चौहान के अनुरोध से श्हम्मीररासो' नामक एक बड़ा प्रबंधकाव्य संवत् 1875 में लिखा जिसमें रणथंभौर के प्रसिद्ध वीर महाराज हम्मीरदेव का चरित्र वीरगाथाकाल की छप्पय पद्ध ति पर वर्णन किया गया है। हम्मीरदेव सम्राट पृथ्वीराज के वंशज थे। उन्होंने दिल्ली के सुल्तान अलाउद्दीन को कई बार परास्त किया था और अंत में अलाउद्दीन की चढ़ाई में ही वे मारे गए थे। इस दृष्टि से इस काव्य के नायक देश के प्रसिद्ध वीरों में हैं। जोधाराज ने चंद आदि प्राचीन कवियों की पुरानी भाषा का भी यत्रा तत्रा अनुकरण किया है, जैसे जगह-जगह 'हि' विभक्ति के प्राचीन रूप 'ह' का प्रयोग। 'हम्मीररासो' की कविता बड़ी ओजस्विनी है। घटनाओं का वर्णन ठीक ठीक और विस्तार के साथ

हुआ है। काव्य का स्वरूप देने के लिए कवि ने कुछ घटनाओं की कल्पना भी की है जैसे महिमा मंगोल का अपनी प्रेयसी वेश्या के साथ दिल्ली से भागकर हम्मीरदेव की शरण में आना और अलाउद्दीन का दोनों को माँगना। यह कल्पना राजनीतिक उद्देश्य हटाकर प्रेम प्रसंग को युद्ध का कारण बताने के लिए, प्राचीन कवियों की प्रथा के अनुसार की गई है। पीछे संवत् 1902 में चंद्रशेखर वाजपेयी ने जो हम्मीरहठ लिखा उसमें भी यह घटना ज्यों की त्यों ले ली गई है। ग्वाल कवि के हम्मीरहठ में भी बहुत संभव है कि, यह घटना ली गई होगी।

प्राचीन वीरकाल के अंतिम राजपूत वीर का चरित जिस रूप में और जिस प्रकार की भाषा में अंकित होना चाहिए था उसी रूप में उसी प्रकार की भाषा में जोधाराज अंकित करने में सफल हुए हैं, इसमें कोई संदेह नहीं। इन्हें हिन्दी काव्य की ऐतिहासिक परंपरा की अच्छी जानकारी थी, यह बात स्पष्ट लक्षित होती है। नीचे इनकी रचना के कुछ नमूने उद्धृत किए जाते हैं,

कब हठ करै अलावदी रणथँभवर गढ़ आहि।
कबै सेख सरनै रहै बहुरयो महिमा साहि।
सूर सोच मन में करौ, पदवी लहौ न फेरि।
जो हठ छंडो राव तुम, उत न लजै अजमेरि।
सरन राखि सेख न तजौ, तजौ सीस गढ़ देस।
रानी राव हमीर को यह दीन्हौं उपदेस।
कहँ पवार जगदेव सीस आपन कर कट्टयो।
कहाँ भोज विक्रम सुराव जिन परदुख मिट्टयो।
सवा भार नित करन कनक विप्रन को दीनो।
रह्यो न रहिए कोय देव नर नाग सु चीनो।
यह बात राव हम्मीर सूँ रानी इमि आसा कही।
जो भई चक्कवै मंडली सुनौ राव दीखै नहीं।
जीवन मरन सँजोग जग कौन मिटावै ताहि।
जो जनमै संसार में अमर रहै नहिं आहि।
कहाँ जैत कहँ सूर, कहाँ सोमेस्वर राणा।
कहाँ गए प्रथिराज साह दल जीति न आणा।
होतब मिटै न जगत में कीजै चिंता कोहि।
आसा कहै हमीर सौं अब चूकौ मति सोहि।

पुंडरीक सुत सुता तासु पद कमल मनाऊँ।
बिसद बरन बर बसन बिषद भूषन हिय धयाऊँ।
बिषद जंत्रा सुर सुद्ध तंत्र सुंदर जेत सोहै।
विषद ताल इक भुजा, दुतिय पुस्तक मन मोहै।
मति राजहंस हंसन चढ़ी रटी सुरन कीरति बिमल।
जय मातु सदा बरदायिनी, देहु सदा बरदान बल।

15. बख्शी हंसराज–ये श्रीवास्तव कायस्थ थे। इनका जन्म संवत् 1799 में पन्ना में हुआ था। इनके पूर्वज बख्शी हरिकिशुन जी पन्ना राज्य के मंत्री थे। हंसराज जी पन्नानरेश श्री अमानसिंह जी के दरबारियों में थे। ये ब्रज की व्यास गद्दी के 'विजयसखी' नामक महात्मा के शिष्य थे, जिन्होंने इनका सांप्रदायिक नाम 'प्रेमसखी' रखा था। 'सखी भाव' के उपासक होने के कारण इन्होंने अत्यंत प्रेम माधुर्यपूर्ण रचनाएँ की हैं। इनके चार ग्रंथ पाए जाते हैं,

(1) सनेहसागर, (2) विरहविलास, (3) रामचंद्रिका, (4) बारहमासा (संवत् 1811)।

इनमें से प्रथम बड़ा ग्रंथ है। दूसरा शायद इनकी पहली रचना है। 'सनेहसागर' का संपादन श्रीयुत् लाला भगवानदीनजी बड़े अच्छे ढंग से कर चुके हैं। शेष ग्रंथ प्रकाशित नहीं हुए हैं।

'सनेहसागर' नौ तरंगों में समाप्त हुआ है, जिनमें कृष्ण की विविधा लीलाएँ सार छंद में वर्णन की गई हैं। भाषा बहुत ही मधुर, सरस और चलती है। भाषा का ऐसा स्निग्ध सरल प्रवाह बहुत ही कम देखने में आता है। पदविन्यास अत्यंत कोमल और ललित है। कृत्रिमता का लेश नहीं। अनुप्रास बहुत ही संयत मात्रा में और स्वाभाविक है। माधुर्य प्रधानतः संस्कृत की पदावली का नहीं, भाषा की सरल सुबोध पदावली का है। एक शब्द का भी समावेश व्यर्थ केवल पादपूर्त्यअर्थ नहीं है। सारांश यह कि इनकी भाषा सब प्रकार से आदर्श भाषा है। कल्पना भावविधान में ही पूर्णतया प्रवृत्त है, अपनी अलग उड़ान दिखाने में नहीं। भावविकास के लिए अत्यंत परिचित और स्वाभाविक व्यापार ही रखे गए हैं। वास्तव में 'सनेहसागर' एक अनूठा ग्रंथ है। उसके कुछ पद नीचे उद्धृत किए जाते हैं,

दमकति दिपति देह दामिनि सी चमकत चंचल नैना।
घूँघट बिच खेलत खंजन से उड़ि उड़ि दीठि लगै ना।

लटकति ललित पीठ पर चोटी बिच बिच सुमन सँवारी।
देखे ताहि मैर सो आवत, मनहु भुजंगिनी कारी।
इत ते चली राधिका गोरी सौंपन अपनी गैया।
उत तें अति आतुर आनंद सों आये कुँवर कन्हैया।
कसि भौहैं, हँसि कुँवरि राधिका कान्ह कुँवर सों बोली।
अंग अंग उमगि भरे आनंद सौं, दरकति छिन छिन चोली।
एरे मुकुटवार चरवाहे! गाय हमारी लीजौ।
जाय न कहूँ तुरत की ब्यानी, सौंपि खरक कै दीजौ।
होहु चरावनहार गाय के बाँधानहार छुरैया।
कलि दीजौ तुम आय दोहनी, पावै दूध लुरैया।
कोऊ कहूँ आय बनवीथिन या लीला लखि जैहै।
कहि कहि कुटिल कठिन कुटिलन सों सिंगरे ब्रजबगरै है।
जो तुम्हरी इनकी ये बातैं सुनिहैं कीरति रानी।
तौ कैसै पटिहै पाटे तें, घटिहै कुल को पानी।

16. जनकराज किशोरीशरण–ये अयोध्या के एक वैरागी थे और संवत् 1797में वर्तमान थे। इन्होंने भक्ति, ज्ञान और रामचरित संबंधिनी बहुत सी कविता की है। कुछ ग्रंथ संस्कृत में भी लिखे हैं। हिन्दी कविता साधारणत: अच्छी है। इनकी बनाई पुस्तकों के नाम ये हैं,

आंदोलनरहस्य दीपिका, तुलसीदासचरित्र, विवेकसार चंद्रिका, सिद्धांत चौंतीसी, बारहखड़ी, ललित श्रृंगार दीपक, कवितावली, जानकीशरणाभरण, सीताराम सिद्धांतमुक्तावली, अनन्यतरंगिणी, रामरसतरंगिणी, आत्मसंबंधदर्पण, होलिकाविनोददीपिका, वेदांतसार, श्रुतिदीपिका, रसदीपिका, दोहावली, रघुवर करुणाभरण।

उपर्युक्त सूची से प्रकट है कि इन्होंने राम सीता केश्रृंगार, ऋतुबिहार आदि के वर्णन में ही भाषा कविता की है। इनका एक पद्य आगे दिया जाता है,

फूले कुसुम द्रुम विविधा रंग सुगंधा के चहुँ चाब।
गुंजत मधुप मधुमत्ता नाना रंग रज अंग फाब।
सीरो सुगंधा सुमंद बात विनोद कंत बहंत।
परसत अनंग उदोत हिय अभिलाष कामिनिकंत।

17. अलबेली अलि–ये विष्णुस्वामी संप्रदाय के महात्मा 'वंशीअलि' जी के शिष्य थे। इनके अतिरिक्त इनका कोई वृत्त ज्ञात नहीं। अनुमान से इनका

कविताकाल विक्रम की 18वीं शताब्दी का अंतिम भाग आता है। ये भाषा के सत्कवि होने के अतिरिक्त संस्कृत में भी सुंदर रचना करते थे जिसका प्रमाण इनका लिखा 'श्रीस्त्रोत' है। इन्होंने 'समयप्रबंध पदावली' नामक एक ग्रंथ लिखा है जिसमें 313 बहुत ही भावभरे पद हैं। नीचे कुछ पद उद्धृत किए जाते हैं,

लाल तेरे लोभी लोलुप नैन।
केहि रस छकनि छके हौ छबीले मानत नाहिन चैन।
नींद नैन घुरि घुरि आवत अति, घोरि रही कछु नैन।
अलबेली अलि रस के रसिया, कत बिसरत ये बैन।
बने नवल प्रिय प्यारी।
सरद रैन उजियारी।
सरद रैन सुखदैन मैनमय जमुनातीर सुहायो।
सकल कलापूरन ससि सीतल महिमंडल पर आयो।
अतिसय सरस सुगंधा मंद गति बहत पवन रुचिकारी।
नव नव रूप नवल नव जोबन बने नवल पिय प्यारी।

18. चाचा हित वृंदावन दास—ये पुष्कर क्षेत्र के रहने वाले गौड़ ब्राह्मण थे और संवत् 1765 में उत्पन्न हुए थे। ये राधाबल्लभीय गोस्वामी पजी के शिष्य थे। तत्कालीन गोसाईं जी के पिता के गुरु भ्राता होने के कारण गोसाईं जी की देखा देखी सब लोग इन्हें 'चाचाजी' कहने लगे। ये महाराज नागरीदास जी के भाई बहारदुरसिंह जी के आश्रय में रहते थे, पर जब राजकुल में विग्रह उत्पन्न हुआ तब ये कृष्णगढ़ छोड़कर वृंदावन चले आए और अंत समय तक वहीं रहे। संवत् 1800 से लेकर संवत् 1844 तक की इनकी रचनाओं का पता लगता है। जैसे सूरदास के सवा लाख पद बनाने की जनश्रुति है, वैसे ही इनके भी एक लाख पद और छंद बनाने की बात प्रसिद्ध है। इनमें से 20,000 के लगभग पद्य तो इनके मिले हैं। इन्होंने नखशिख, अष्टयाम, समयप्रबंध, छविलीला आदि असंख्य प्रसंगों का विशद वर्णन किया है। छिविलीलाओं का वर्णन तो बड़ा ही अनूठा है। इनके ग्रंथ प्रकाशित नहीं हुए हैं। रागरत्नाकर आदि ग्रंथों में इनके बहुत से पद संगृहीत मिलते हैं। छत्रपुर के राजपुस्तकालय में इनकी बहुत सी रचनाएँ सुरक्षित हैं।

इतने अधिक परिमाण में होने पर भी इनकी रचना शिथिल या भरती की नहीं है। भाषा पर इनका पूरा अधिकार प्रकट होता है। लीलाओं के अंतर्गत वचन और व्यापार की योजना भी इनकी कल्पना की स्फूर्ति का परिचय देती है। इनके दो पद नीचे दिए जाते हैं,

(मनिहारी लीला से)

मिठबोलनी नवल मनिहारी।
भौंहें गोल गरूर हैं, याके नयन चुटीले भारी।
चूरी लखि मुख तें कहै, घूँघट में मुसकाति।
ससि मनु बदरी ओट तें दुरि दरसत यहि भाँति।
चूरो बड़ो है मोल को, नगर न गाहक कोय।
मो फेरी खाली परी, आई सब घर टोय
प्रीतम तुम मो दृगन बसत हो।
कहा भरोसे ह्वै पूछत हौ, कै चतुराई करि जु हँसत हौ
लीजै परखि स्वरूप आपनो, पुतरिन में तुमहीं तौ लसतहौ।
वृंदावन हित रूप रसिक तुम, कुंज लड़ावत हिय हुलसतहौ

19. गिरधर कविराय- इनका कुछ भी वृत्तांत ज्ञात नहीं। नाम से भाट जान पड़ते हैं। शिवसिंह ने इनका जन्म संवत् 1770 दिया है, जो संभवत: ठीक हो। इस हिसाब से इनका कविता काल संवत् 1800 के उपरांत ही माना जा सकता है। इनकी नीति की कुंडलियाँ ग्राम ग्राम में प्रसिद्ध हैं। अनपढ़ लोग भी दो-चार चरण जानते हैं। इस सर्वप्रियता का कारण है बिल्कुल सीधी सादी भाषा में तथ्याभाव का कथन। इनमें न तो अनुप्रास आदि द्वारा भाषा की सजावट है, न उपमा, उत्प्रेक्षा आदि का चमत्कार। कथन की पुष्टि मात्र के लिए (अलंकार की दृष्टि से नहीं) दृष्टांत आदि इधर-उधर मिलते हैं। कहीं कहीं पर बहुत कम, कुछ अन्योक्ति का सहारा इन्होंने लिया है। इन सब बातों के विचार से ये कोरे 'पद्यकार' ही कहे जा सकते हैं, सूक्तिकार भी नहीं। वृंद कवि में और इनमें यही अंतर है। वृंद ने स्थान स्थान पर अच्छी घटती हुई और सुंदर उपमाओं आदि का भी विधान किया है। पर इन्होंने कोरा तथ्यकथन किया है। कहीं कहीं तो इन्होंने शिष्टता का ध्यान भी नहीं रखा है। घर गृहस्थी के साधारण व्यवहार, लोक व्यवहार आदि का बड़े स्पष्ट शब्दों में इन्होंने कथन किया है। यही स्पष्टता इनकी सर्वप्रियता का एकमात्र कारण है। दो कुंडलियाँ दी जाती हैं,

साईं बेटा बाप के बिगरे भयो अकाज।
हरनाकुस अरु कंस को गयो दुहुन को राज।
गयो दुहुन को राज बाप बेटा के बिगरे।
दुसमन दावागीर भए महिमंडल सिगरे।
कह गिरिधर कविराय जुगन याही चलि आई।
पिता पुत्र के बैर नफा कहु कौने पाई।
रहिए लटपट काटि दिन बरु घामहिं में सोय।
छाँह न वाकी बैठिए जो तरु पतरो होय।
जो तरु पतरो होय एक दिन धोखा दैहै।
जा दिन बहै बयारि टूटि तब जर से जैहै।
कह गिरधार कविराय छाँह मोटे की गहिए।
पाता सब झरि जाय तऊ छाया में रहिए।

20. भगवत रसिक–ये टट्टी संप्रदाय के महात्मा स्वामी ललित मोहनीदास के शिष्य थे। इन्होंने गद्दी का अधिकार नहीं लिया और निर्लिप्त भाव से भगवद्भजन में लगे रहे। अनुमान से इनका जन्म संवत् 1795 के लगभग हुआ। अत: इनका रचनाकाल संवत् 1830 और 1850 के बीच माना जा सकता है। इन्होंने अपनी उपासना से संबंध रखनेवाले अनन्य प्रेमरसपूर्ण बहुत से पद, कवित्त, कुंडलियाँ, छप्पय आदि रचे हैं जिनमें एक ओर तो वैराग्य का भाव और दूसरी ओर अनन्य प्रेम का भाव छलकता है। इनका हृदय प्रेमरसपूर्ण था। इसी से इन्होंने कहा है कि 'भगवत रसिक रसिक की बातें रसिक बिना कोउ समुझि सकै ना।' ये कृष्णभक्ति में लीन एक प्रेमयोगी थे। इन्होंने प्रेमतत्त्व का निरूपण बड़े ही अच्छे ढंग से किया है। कुछ पद्य नीचे दिए जाते हैं,

कुंजन तें उठि प्रात गात जमुना में धोवैं।
निधुवन करि दंडवत बिहारी को मुख जोवैं।
करैं भावना बैठि स्वच्छ थल रहित उपाधा।
घर घर लेय प्रसाद लगै जब भोजन साधा।
संग करै भगवत रसिक, कर करवा गूदरि गरे।
बृंदावन बिहरत फिरै, जुगल रूप नैनन भरै।
हमारो वृंदावन उर और।
माया काल तहाँ नहिं व्यापै जहाँ रसिक सिरमौर।

छूटि जाति सत असत वासना, मन की दौरादौर।
भगवत रसिक बतायो श्रीगुरु अमल अलौकिक ठौर।

21. श्री हठीजी–ये श्री हितहरिवंश जी की शिष्य परंपरा में बड़े ही साहित्यमर्मज्ञ और कलाकुशल कवि हो गए हैं। इन्होंने संवत् 1837 में 'राधासुधाशतक' बनाया जिसमें 11 दोहे और 103 कवित्त सवैया हैं। अधिकांश भक्तों की अपेक्षा इनमें विशेषता यह है कि इन्होंने कलापक्ष पर भी पूरा जोर दिया है। इनकी रचना में यमक, अनुप्रास, उपमा, उत्प्रेक्षा आदि का बाहुल्य पाया जाता है। पर साथ ही भाषा या वाक्य विन्यास में लद्धड़पन नहीं आने पाया है। वास्तव में 'राधासुधाशतक' छोटा होने पर भी अपने ढंग का अनूठा ग्रंथ है। भारतेंदु हरिश्चंद्र को यह ग्रंथ अत्यंत प्रिय था। उससे कुछ अवतरण नीचे दिए जाते हैं,

कलप लता के किधौं पल्लव नवीन दोऊ,
हरन मंजुता के कंज ताके बनिता के हैं।
पावन पतित गुन गावैं मुनि ताके छबि,
छलै सबिता के जनता के गुरुताके हैं।
नवौं निधि ताके सिद्ध ता के आदि आलै हठी,
तीनौ लोकता के प्रभुता के प्रभु ताके हैं।
कटै पाप ताकै बढ़ै पुन्य के पताके जिन,
ऐसे पद ताके वृषभानु की सुता के हैं।
गिरि कीजै गोधान मयूर नव कुंजन को,
पसु कीजै महराज नंद के नगर को।
नर कौन, तौन जौन राधो राधो नाम रटै,
तट कीजै बर कूल कालिंदी कगर को।
इतने पै जोई कछु कीजिए कुँवर कान्ह,
राखिए न आन फेर हठी के झगर को।
गोपी पद पंकज पराग कीजै महाराज,
तृन कीजै रावरेई गोकुल नगर को।

22. गुमान मिश्र–ये महोबे के रहने वाले गोपालमणि के पुत्र थे। इनके तीन भाई और थे। दीपसाहि, खुमान और अमान। गुमान ने पिहानी के राजा अकबरअली खाँ के आश्रय में संवत् 1800 में श्री हर्षकृत नैषधा काव्य का पद्यानुवाद नाना छंदों में किया। यही ग्रंथ इनका प्रसिद्ध है और

प्रकाशित भी हो चुका है। इसके अतिरिक्त खोज में इनके दो ग्रंथ और मिले हैं, कृष्णचंद्रिका और छंदाटवी (पिंगल)। कृष्णचंद्रिका का निर्माणकाल संवत् 1838 है। अतः इनका कविताकाल संवत् 1800 से 1840 तक माना जा सकता है। इन तीनों ग्रंथों के अतिरिक्त रस, नायिकाभेद, अलंकार आदि कई और ग्रंथ सुने जाते हैं।

यहाँ केवल इनके नैषध के संबंध में ही कुछ कहा जा सकता है। इस ग्रंथ में इन्होंने बहुत से छंदों का प्रयोग किया है और बहुत जल्दी जल्दी छंद बदले हैं। इंद्रवज्रा, वंशस्थ, मंदाक्रांता, शार्दूलविक्रीड़ित आदि कठिन वर्णवृत्तों से लेकर दोहा चौपाई तक मौजूद हैं। ग्रंथारंभ में अकबरअली खाँ की प्रशंसा मंद जो बहुत से कवित्त इन्होंने कहे हैं, उनसे इनकी चमत्कारप्रियता स्पष्ट प्रकट होती है। उनमें परिसंख्या अलंकार की भरमार है। गुमान जी अच्छे साहित्यमर्मज्ञ और काव्यकुशल थे, इसमें कोई संदेह नहीं। भाषा पर भी इनका पूरा अधिकार था। जिन श्लोकों के भाव जटिल नहीं हैं उनका अनुवाद बहुत ही सरस और सुंदर है। वह स्वतंत्र रचना के रूप में प्रतीत होता है पर जहाँ कुछ जटिलता है वहाँ की वाक्यावली उलझी हुई और अर्थ अस्पष्ट है। बिना मूल श्लोक सामने आए ऐसे स्थानों का स्पष्ट अर्थ निकालना कठिन ही है। अतः सारी पुस्तक के संबंध में यही कहना चाहिए कि अनुवाद में वैसी सफलता नहीं हुई है। संस्कृत के भावों के सम्यक् अवतरण में यह असफलता गुमान ही के सिर नहीं मढ़ी जा सकती। रीतिकाल के जिन जिन कवियों ने संस्कृत से अनुवाद करने का प्रयत्न किया है उनमें बहुत से असफल हुए हैं। ऐसा जान पड़ता है कि इस काल में जिस मधुर रूप में ब्रजभाषा का विकास हुआ, वह सरल व्यंजना के तो बहुत ही अनुकूल हुआ पर जटिल भावों और विचारों के प्रकाश में वैसा समर्थ नहीं हुआ। कुलपति मिश्र ने 'रसरहस्य' में काव्यप्रकाश का जो अनुवाद किया है उसमें भी जगह-जगह इसी प्रकार अस्पष्टता है।

गुमानजी उत्तम श्रेणी के कवि थे, इसमें संदेह नहीं। जहाँ वे जटिल भाव भरने की उलझन में नहीं पड़े हैं वहाँ की रचना अत्यंत मनोहारिणी हुई है। कुछ पद्य उद्धृत किए जाते हैं,

दुर्जन की हानि, बिरधापनोई करै पीर,
गुन लोप होत एक मोतिन के हार ही।
टूटे मनिमालै निरगुन गायताल लिखै,
पोथिन ही अंक, मन कलह विचारही।

संकर बरन पसु पच्छिन में पाइयत,
अलक ही पारै अंसभंग निराधार ही।
चिर चिर राजौ राज अली अकबर, सुरराज,
के समाज जाके राज पर बारही।
दिग्गज दबत दबकत दिगपाल भूरि,
धूरि की धुंधोरी सों अंधेरी आभा भान की।
धाम औ धारा को, माल बाल अबला को अरि,
तजत परान राह चाहत परान की।
सैयद समर्थ भूप अली अकबर दल,
चलत बजाय मारू दुंदुभी धुकान की।
फिर फिर फननि फनीस उलटतु ऐसे,
चोली खोलि ढोली ज्यों तमोली पाके पानकी।
न्हाती जहाँ सुनयना नित बावलीमें,
छूटे उरोजतल कुंकुम नीर ही में।
श्रीखंड चित्र दृग अंजन संग साजै,
मानौ त्रिबेनि नित ही घर ही बिराजै।
हाटक हंस चल्यो उड़िकै नभ में दुगुनी तन ज्योति भई।
लीक सी खैंचि गयो छन में छहराय रही छबि सोनमई।
नैनन सों निरख्यो न बनायकै कै उपमा मन माहिं लई।
स्यामल चीर मनौ पसरयो तेहि पै कल कंचन बेलि नई।

23. सरजूराम पंडित–इन्होंने 'जैमिनीपुराण भाषा' नामक एक कथात्मक ग्रंथ संवत् 1805 में बनाकर तैयार किया। इन्होंने अपना कुछ भी परिचय अपने ग्रंथ में नहीं दिया है। जैमिनीपुराण दोहों, चौपाइयों में तथा और कई छंदों में लिखा गया है और 36 अधयायों में समाप्त हुआ है। इसमें बहुतसी कथाएँ आई हैंय जैसे युधिष्ठर का राजसूय यज्ञ, संक्षिप्त रामायण, सीतात्याग, लवकुश युद्ध, मयूरधवज, चंद्रहास आदि राजाओं की कथाएँ। चौपाइयों का ढंग 'रामचरितमानस' का सा है। कविता इनकी अच्छी हुई है। उसमें गांभीर्य है। नमूने के लिए कुछ पद नीचे दिए जाते हैं,

गुरुपद पंकज पावन रेनू।
गुरुपद रज अज हरिहर धामा।
तब लगि जग जड़ जीव भुलाना।

श्री गुरु पंकज पाँव पसाऊ।
सुमिरत होत हृदय असनाना।

24. भगवंत राय खीची ये असोथर (जिला, फतेहपुर) के बड़े गुणग्राही राजा थे जिनके यहाँ बराबर अच्छे अच्छे कवियों का सत्कार होता रहता था। शिवसिंहसरोज में लिखा है कि इन्होंने सातों कांड रामायण बड़े सुंदर कवित्तों में बनाई है। यह रामायण तो इनकी नहीं मिलती पर हनुमान जी की प्रशंसा के 50 कवित्त इनके अवश्य पाए गए हैं, जो संभव है रामायण के ही अंश हों। खोज में इनकी 'हनुमत् पचीसी' मिली है उसमें निर्माणकाल 1817 दिया है। इनकी कविता बड़ी ही उत्साहपूर्ण और ओजस्विनी है। एक कवित्त देखिए,

विदित बिसाल ढाल भालु कपि जाल की है,
ओट सुरपाल की है तेज के तुमार की।
जाहि सों चपेटि कै गिराए गिरि गढ़ जासों,
कठिन कपाट तोरे, लंकनी सो मार की।
भनै भगवंत जासों लागि लागि भेंटे प्रभु,
जाके त्रास लखन को छुभिता खुमार की।
ओढ़े ब्रह्म अस्त्रा की अवाती महाताती, बंदौ,
युद्ध मत माती छाती पवनकुमार की।

25. सूदन–ये मथुरा के रहने वाले माथुर चौबे थे। इनके पिता का नाम बसंत था। सूदन भरतपुर के महाराज बदनसिंह के पुत्र सुजानसिंह उपनाम सूरजमल के यहाँ रहते थे। उन्हीं के पराक्रमपूर्ण चरित्र का वर्णन इन्होंने 'सुजानचरित' नामक प्रबंधकाव्य में किया है। मुगल साम्राज्य के गिरे दिनों में भरतपुर के जाट राजाओं का कितना प्रभाव बढ़ा था यह इतिहास में प्रसिद्ध है। उन्होंने शाही महलों और खजानों को कई बार लूटा था। पानीपत की अंतिम लड़ाई के संबंध में इतिहासज्ञों की धारणा है कि यदि पेशवा की सेना का संचालन भरतपुर के अनुभवी महाराज के कथनानुसार हुआ होता और ये रूठकर न लौट आए होते तो मराठों की हार कभी न होती। इतने ही से भरतपुर वालों के आतंक और प्रभाव का अनुमान हो सकता है। अत: सूदन को एक सच्चा वीर चरित्रनायक मिल गया।

'सुजानचरित' बहुत बड़ा ग्रंथ है। इसमें संवत् 1802 से लेकर 1810 तक की घटनाओं का वर्णन है। अत: इसकी समाप्ति 1810 के दस पंद्रह वर्ष पीछे

मानी जा सकती है। इस हिसाब से इनका कविताकाल संवत् 1820 के आसपास मानाजा सकता है। सूरजमल की वीरता की जो घटनाएँ कवि ने वर्णित की हैं वे कपोलकल्पित नहीं, ऐतिहासिक हैं। जैसे अहमदशाह बादशाह के सेनापति असद खाँ के फतहअली पर चढ़ाई करने पर सूरजमल का फतहअली के पक्ष में होकर असद खाँ का ससैन्य नाश करना, मेवाड़, माड़ौगढ़ आदि जीतना, संवत् 1804 में जयपुर की ओर होकर मरहठों को हटाना, 1805 में बादशाही सेनापति सलावतखाँ बख्शी को परास्त करना, संवत् 1806 में शाही वजीर सफदरजंग मंसूर की सेना से मिलकर बंगश पठानों पर चढ़ाई करना, बादशाह से लड़कर दिल्ली लूटना, इत्यादि। इन सब बातों के विचार से 'सुजानचरित' का ऐतिहासिक महत्त्व भी बहुत कुछ है।

इस काव्य की रचना के संबंध में सबसे पहली बात जिस पर ध्यान जाता है वह वर्णनों का अत्यधिक विस्तार और प्रचुरता है। वस्तुओं की गिनती गिनाने की प्रणाली का इस कवि ने बहुत अधिक अवलंबन किया है, जिससे पाठकों को बहुत से स्थलों पर अरुचि हो जाती है। कहीं घोड़ों की जातियों के नाम ही गिनते चले गए हैं, कहीं अस्त्रों और वस्त्रों की सूची की भरमार है, कहीं भिन्न भिन्न देशवासियों और जातियों की फिहरिस्त चल रही है। इस कवि को साहित्यिक मर्यादा का ध्यान बहुत ही कम था। भिन्न भिन्न भाषाओं, बोलियों को लेकर कहीं कहीं इन्होंने पूरा खिलवाड़ किया है। ऐसे चरित्र को लेकर जो गांभीर्य काव्य में होना चाहिए था वह इनमें नहीं पाया जाता। पद्य में व्यक्तियों और वस्तुओं के नाम भरने की निपुणता इस कवि की एक विशेषता समझिए। ग्रंथारंभ में ही 175 कवियों के नाम गिनाए गए हैं। सूदन में युद्ध, उत्साहपूर्ण भाषण, चित्त की उमंग आदि वर्णन करने की पूरी प्रतिभा थी, पर उक्त त्रुटियों के कारण उनके ग्रंथ का साहित्यिक महत्त्व बहुत कुछ घटा हुआ है। प्रगल्भता और प्रचुरता का प्रदर्शन सीमा का अतिक्रमण कर जाने के कारण जगह जगह खटकता है। भाषा के साथ भी सूदनजी ने पूरी मनमानी की है। पंजाबी, खड़ी बोली, सबका पुट मिलता है। न जाने कितने गढ़ंत के और तोड़े-मरोड़े शब्द लाए गए हैं। जो स्थल इन सब दोषों से मुक्त हैं वे अवश्य मनोहर हैं, पर अधिकतर शब्दों की तड़ातड़ भड़ाभड़ से जी ऊबने लगता है। यह वीररसात्मक ग्रंथ है और इसमें भिन्न भिन्न युद्धों का ही वर्णन है इससे अध्यायों का नाम जंग रखा गया है। सात जंगों में ग्रंथ समाप्त हुआ है। छंद बहुत से प्रयुक्त हुए हैं। कुछ पद्य नीचे उद्धृत किए जाते हैं,

बखत बिलंद तेरी दुंदुभी धुकारन सों,
दुंद दबि जात देस देस सुख जाही के।
दिन दिन दूनो महिमंडल प्रताप होत,
सूदन दुनी में ऐसे बखत न काही के।
उद्ध त सुजानसुत बुद्धि बलवान सुनि,
दिल्ली के दरनि बाजै आवज उछाही के।
जाही के भरोसे अब तखत उमाही करैं,
पाही से खरे हैं, जो सिपाही पातसाही के।
दुहुँ ओर बंदूक जहँ चलत बेचूक,
रव होत धुकधूक, किलकार कहुँ कूक।
कहुँ धानुष टंकार जिहि बान झंकार,
भट देत हुंकार संकार मुँह सूक।
कहुँ देखि दपटंत, गज बाजि झपटंत,
अरिब्यूह लपटंत, रपटंत कहुँ चूक।
समसेर सटकंत, सर सेल फटकंत,
कहुँ जात हटकंत, लटकंत लगि झूक।
दब्बत लुत्थिनु अब्बत इक्क सुखब्बत से।
चब्बत लोह, अचब्बत सोनित गब्बत से,
चुट्टित खुट्टित केस सुलुट्टित इक्क मही।
जुट्टित फुट्टित सीस, सुखुट्टित तेग गही,
कुट्टित घुट्टित काय बिछुट्टित प्रान सही।
छुट्टित आयुधाय हुट्टित गुट्टित देह दही,
धड़धरं धड़धरं भड़भब्भरं भड़भब्भरं।
तड़तत्तारं तड़तत्तारं कड़कक्करं कड़कक्करं,
घड़घग्घरं घड़घग्घरं झड़झज्झरं झड़झज्झरं।
अररर्ररं अररर्ररं सररर्ररं सररर्ररं,
सोनित अरघ ढारि, लुत्थ जुत्थ पाँवड़े दै।
दारुधूम धूपदीप, रंजक की ज्वालिका,
चरबी को चंदन, पुहुप पल, टूकन के।
अच्छत अखंड गोला गोलिन की चालिका,
नैवेद्य नीको साहि सहति दिली को दल।

कामना विचारी मनसूर पन पालिका,
कोटरा के निकट बिकट जंग जोरि सूजा।
भली विधि पूजा कै प्रसन्न कीन्हीं कालिका,
इसी गल्ल धारि कन्न में बकसी मुसक्याना।
हमनूँ बूझत हौं तुसी 'क्यों किया पयाना'
'असी आवने भेदनूँ तूने नहिं जाना।
साह अहम्मद ने तुझे अपना करि माना'
डोलती डरानी खतरानी बतरानी बेबे।
कुड़िए न बेखी अणी मी गुरुन पावाँ हाँ।
कित्थे जला पेऊँ, कित्थे उज्जले भिड़ाऊँ असी,
तुसी को लै गीवा असी जिंदगी बचावा हाँ।
भट्टरा साहि हुआ चंदला वजीर बेखो,
एहा हाल कीता, वाह गुरुनूँ मनावा हाँ।
जावाँ कित्थे जावाँ अम्मा बाबे केही पावाँजली,
एही गल्ल अक्खैं लक्खौं लक्खौं गली जावाँ हाँ।

26. हरनारायण- इन्होंने 'माधवानल कामकंदला' और 'बैताल पचीसी' नामक दो कथात्मक काव्य लिखे हैं। 'माधावानल कामकंदला' का रचनाकाल संवत् 1812 है। इनकी कविता अनुप्रास आदि से अलंकृत हैं। एक कवित्त दिया जाताहै,

सोहैं मुंड चंद सों, त्रिपुंड सों विराजै भाल,
तुंड राजै रदन उदंड के मिलन तें।
पाप रूप पानिप विघन जल जीवन के,
कुंड सोखि सुजन बचावै अखिलन तें,
ऐसे गिरिनंदिनी के नंदन को ध्यान ही में,
कीबे छोड़ सकल अपानहि दिलन तें।
भुगुति मुकुति ताके तुंड तें निकसि तापै,
कुंड बाँधि कढ़ती भूसुंड के विलन तें।

27. ब्रजवासी दास- ये वृंदावन के रहने वाले और बल्लभ संप्रदाय के अनुयायी थे। इन्होंने संवत् 1827 में 'ब्रजविलास' नामक एक प्रबंधकाव्य तुलसीदास के अनुकरण पर दोहों चौपाइयों में बनाया। इसके अतिरिक्त इन्होंने 'प्रबोध चंद्रोदय' नाटक का अनुवाद भी विविधा छंदों में किया है। पर इनका

सबसे प्रसिद्ध ग्रंथ 'ब्रजविलास' ही है जिसका प्रचार साधारण श्रेणी के पाठकों में है। इस ग्रंथ में कथा भी सूरसागर क्रम से ली गई है और बहुत से स्थलों पर सूर के शब्द और भाव भी चौपाइयों में रख दिए गए हैं। इस बात को ग्रंथकार ने स्वीकार भी किया है,

यामैं कछुक बुद्धि नहिं मेरी। उक्ति युक्ति सब सूरहि केरी।

इन्होंने तुलसी का छंदक्रम ही लिया है, भाषा शुद्ध ब्रजभाषा ही है। उसमें कहीं अवधी या बैसवाड़ी का नाम तक नहीं है। जिनको भाषा की पहचान तक नहीं, जो वीररस वर्णन परिपाटी के अनुसार किसी पद्य में वर्णों का द्वित्व देख उसे प्राकृत भाषा कहते हैं, वे चाहे जो कहें। ब्रजविलास में कृष्ण की भिन्न-भिन्न लीलाओं का जन्म से लेकर मथुरा गमन तक का वर्णन किया गया है। भाषा सीधी-सादी, सुव्यवस्थित और चलती हुई है। व्यर्थ शब्दों की भरती न होने से उसमें सफाई है। यह सब होने पर भी इसमें वह बात नहीं है जिसके बल से गोस्वामी जी के रामचरितमानस का इतना देशव्यापी प्रचार हुआ। जीवन की परिस्थितियों की वह अनेकरूपता, गंभीरता और मर्मस्पर्शिता इसमें कहाँ जो रामचरित और तुलसी की वाणी में है? इसमें तो अधिकतर क्रीड़ामय जीवन का ही चित्रण है। फिर भी साधारण श्रेणी के कृष्णभक्त पाठकों में इसका प्रचार है। नीचे कुछ पद्य दिए जाते हैं,

कहति जसोदा कौन बिधि, समझाऊँ अब कान्ह।
भूलि दिखायो चंद मैं, ताहि कहत हरि खान।
यहै देत नित माखन मोको । छिन छिन देति तात सो तोको।
जो तुम श्याम चंद को खैहो । बहुरो फिर माखन कह पैहौ?
देखत रहौ खिलौना चंदा । हठ नहिं कीजै बालगोविंदा।
पा लागौं हठ अधिक न कीजै । मैं बलि, रिसहि रिसहि तनछीजै।
जसुमति कहति कहा धौं कीजै । माँगत चंद कहाँ तें दीजै।
तब जसुमति इक जलपुट लीनो । कर मैं लै तेहि ऊँचो कीनो
ऐसे कहि स्यामै बहरावै । आव चंद, तोहि लाल बुलावै।
हाथ लिए तेहि खेलत रहिए । नैकु नहीं धारनी पै धारिए।

28. गोकुलनाथ, गोपीनाथ और मणिदेव-इन तीनों महानुभावों ने मिलकर हिन्दी साहित्य में बड़ा भारी काम किया है। इन्होंने समग्र महाभारत और हरिवंश (जो महाभारत का ही परिशिष्ट माना जाता है) का अनुवाद अत्यंत मनोहर विविधा छंदों में पूर्ण कवित्त के साथ किया है। कथाप्रबंध का इतना बड़ा

काव्य हिन्दी साहित्य में दूसरा नहीं बना। यह लगभग दो हजार पृष्ठों में समाप्त हुआ है। इतना बड़ा ग्रंथ होने पर भी न तो इसमें कहीं शिथिलता आई है और न ही रोचकता और काव्यगुण में कमी हुई है। छंदों का विधान इन्होंने ठीक उसी रीति से किया है जिस रीति से इतने बड़े ग्रंथ में होना चाहिए। जो छंद उठाया है उसका कुछ दूर तक निर्वाह किया है। केशवदास की तरह छंदों का तमाशा नहीं दिखाया है। छंदों का चुनाव भी बहुत उत्तम हुआ है। रूपमाला, घनाक्षरी, सवैया आदि मधुर छंद अधिक रखे गए हैं, बीच बीच में दोहे और चौपाइयाँ भी हैं। भाषा प्रांजल और सुव्यवस्थित है। अनुप्रास का अधिक आग्रह न होने पर भी आवश्यक विधान है। रचना सब प्रकार से साहित्यिक और मनोहर है और लेखकों की काव्यकुशलता का परिचय देती है। इस ग्रंथ के बनने में भी पचास वर्ष से ऊपर लगे हैं। अनुमानतः इसका आरंभ संवत् 1830 में हो चुका था और संवत् 1884 में जाकर समाप्त हुआ है। इसकी रचना काशीनरेश महाराज उदितनारायण सिंह की आज्ञा से हुई जिन्होंने इसके लिए लाखों रुपये व्यय किए। इस बड़े भारी साहित्यिक यज्ञ के अनुष्ठान के लिए हिन्दी प्रेमी उक्त महाराज के सदा कृतज्ञ रहेंगे।

गोकुलनाथ और गोपीनाथ प्रसिद्ध कवि रघुनाथ बंदीजन के पुत्र और पौत्र थे। मणिदेव बंदीजन भरतपुर राज्य के जहानपुर नामक गाँव के रहने वाले थे और अपनी विमाता के दुर्व्यवहार से रुष्ट होकर काशी चले आए थे। काशी में वे गोकुलनाथजी के यहाँ ही रहते थे। और स्थानों पर भी उनका बहुत मान हुआ था। जीवन के अंतिम दिनों में वे कभी-कभी विक्षिप्त भी हो जाया करते थे। उनका परलोकवास संवत् 1920 में हुआ।

गोकुलनाथ ने इस महाभारत के अतिरिक्त निम्नलिखित और भी ग्रंथ लिखे हैं,

चेतचंद्रिका, गोविंद सुखदविहार, राधाकृष्ण विलास, (संवत् 1858), राधानखशिख, नामरत्नमाला (कोश) (संवत् 1870), सीताराम गुणार्णव, अमरकोष भाषा (संवत् 1870), कविमुखमंडन।

चेतचंद्रिका अलंकार का ग्रंथ है जिसमें काशिराज की वंशावली भी दी गई है। 'राधाकृष्ण विलास' रससंबंधी ग्रंथ है और 'जगतविनोद' के बराबर है। 'सीताराम गुणार्णव' अध्यात्म रामायण का अनुवाद है जिसमें पूरी रामकथा वर्णित है। 'कविमुखमंडन' भी अलंकार संबंधी ग्रंथ है। गोकुलनाथ का कविताकाल

संवत् 1840 से 1870 तक माना जा सकता है। ग्रंथों की सूची से यह स्पष्ट है कि ये कितने निपुण कवि थे। रीति और प्रबंध दोनों ओर इन्होंने प्रचुर रचना की है। इतने अधिक परिमाण में और इतने प्रकार की रचना वही कर सकता है, जो पूर्ण साहित्यमर्मज्ञ, काव्यकला में सिद्ध हस्त और भाषा पर पूर्ण अधिकार रखने वाला हो। अत: महाभारत के तीनों अनुवादकों में तो ये श्रेष्ठ ही हैं, साहित्य के क्षेत्र में भी ये बहुत ऊँचे पद के अधिकारी हैं। रीतिग्रंथ रचना और प्रबंध रचना दोनों में समान रूप से कुशल और दूसरा कोई कवि रीतिकाल के भीतर नहीं पाया जाता।

महाभारत के जिस जिस अंश का अनुवाद जिसने-जिसने किया है, उस उस अंश में उसका नाम दिया हुआ है। नीचे तीनों कवियों की रचना के कुछ उदाहरण दिए जाते हैं,

गोकुलनाथ

सखिन के श्रुति में उकुति कल कोकिलकी।
गुरुजन हू पै पुनि लाज के कथान की।
गोकुल अरुन चरनांबुज पै गुंजपुंज।
धुनि सी चढ़ति चंचरीक चरचान की।
पीतम के श्रवन समीप ही जुगुति होति।
मैन मंत्र तंत्र सू बरन गुनगान की।
सौतिन के कानन में हलाहल ह्वै हलति।
एरी सुखदानि! तौ बजनि बिछुवान की।
(राधाकृष्ण विलास)

दुर्ग अतिही महत रक्षित भटन सों चहुँ ओर।
ताहि घेरयो शाल्व भूपति सेन लै अति घोर,
एक मानुष निकसिबे की रही कतहुँ न राह।
परी सेना शाल्व नृप की भरी जुद्ध उछाह,
लहि सुदेष्णा की सुआज्ञा नीच कीचक जौन।
जाय सिंहिनि पास जंबुक तथा कीनी गौन,
लग्यो कृष्णा सों कहन या भाँति सस्मित बैन।
यहाँ आई कहाँ तें? तुम कौन हौ छबि ऐन,
नहीं तुम सी लखी भू पर भरी सुषमा बाम।

देवि, जच्छिनी, किन्नरी, कै श्री, सची अभिराम,
कांति सों अति भरी तुम्हरो लखन बदन अनूप,
करैगो नहिं स्वबस काको महा मन्मथ भूप।
(महाभारत)

गोपीनाथ

सर्व दिसि में फिरत भीषम को सुरथ मन मान।
लखे सब कोउ तहाँ भूप अलातचक्र समान,
सर्व थर सब रथिन सों तेहि समय नृप सब ओर।
एक भीषम सहस सम रन जुरो हो तहँ जोर,

मणिदेव

बचन यह सुनि कहत भो चक्रांग हंस उदार।
उड़ौगे मम संग किमि तुम कहहु सो उपचार,
खाय जूठो पुष्ट, गर्वित काग सुनि ये बैन।
कह्यौ जानत उड़न की शत रीति हम बल ऐन।

29. बोधा– ये राजापुर (जिला, बाँदा) के रहनेवाले सरयूपारी ब्राह्मण थे। पन्ना के दरबार में इनके संबंधियों की अच्छी प्रतिष्ठा थी। उसी संबंध से ये बाल्यकाल ही में पन्ना चले गए। इनका नाम बुद्धि सेन था, पर महाराज इन्हें प्यार से 'बोधा' कहने लगे और वही नाम इनका प्रसिद्ध हो गया। भाषाकाव्य के अतिरिक्त इन्हें संस्कृत और फारसी का भी अच्छा बोध था। शिवसिंहसरोज में इनका जन्म संवत् 1804 दिया हुआ है। इनका कविताकाल संवत् 1830 से 1860 तक माना जा सकता है।

बोधा एक बड़े रसिक जीव थे। कहते हैं कि पन्ना के दरबार में सुभान (सुबहान) नाम की एक वेश्या थी जिस पर इनका प्रेम हो गया। इस पर रुष्ट होकर महाराज ने इन्हें छह महीने देशनिकाले का दंड दिया। सुभान के वियोग में छह महीने इन्होंने बड़े कष्ट से बिताए और उसी बीच में 'विरहवारीश' नामक एक पुस्तक लिखकर तैयार की। छह महीने पीछे जब ये फिर दरबार में लौटकर आए तब अपने 'विरहवारीश' के कुछ कवित्त सुनाए। महाराज ने प्रसन्न होकर उनसे कुछ माँगने को कहा। इन्होंने कहा 'सुभान अल्लाह'। महाराज ने प्रसन्न होकर सुभान को इन्हें दे दिया और इनकी मुराद पूरी हुई।

'विरहवारीश' के अतिरिक्त 'इश्कनामा' भी इनकी एक प्रसिद्ध पुस्तक है। इनके बहुत से फुटकल कवित्त, सवैये, इधर-उधर पाए जाते हैं। बोधा एक रसोन्मत्त कवि थे, इससे इन्होंने कोई रीतिग्रंथ न लिखकर अपनी मौज के अनुसार फुटकल पद्यों की रचना की है। ये अपने समय के एक प्रसिद्ध कवि थे। प्रेममार्ग के निरूपण में इन्होंने बहुत से पद्य कहे हैं। 'प्रेम की पीर' की व्यंजना भी इन्होंने बड़े मर्मस्पर्शिनी युक्ति से की है। यत्रा तत्रा व्याकरण दोष रहने पर भी इनकी भाषा चलती और मुहावरेदार होती थी। उससे प्रेम की उमंग छलकी पड़ती है। इनके स्वभाव में फक्कड़पन भी कम नहीं था। 'नेजे', 'कटारी' और 'कुरबान' वाली बाजारू ढंग की रचना भी इन्होंने कहीं-कहीं की है। जो कुछ हो, ये भावुक और रसज्ञ कवि थे, इसमें कोई संदेह नहीं। कुछ पद्य इनके नीचे दिए जाते हैं,

अति खीन मृनाल के तारहु तें तेहि ऊपर पाँव दै आवनो है।
सुई बेह कै द्वार सकै न तहाँ परतीति को टाँड़ो लदावनो है,
कवि बोधा अनी घनी नेजहु तें चढ़ि तापै न चित्त डरावनो है।
यह प्रेम को पंथ कराल महा तरवारि की धार पै धाावनो है।
एक सुभान के आनन पै कुरबान जहाँ लगि रूप जहाँ को।
कैयो सतक्रतु की पदवी लुटिए लखि कै मुसकाहट ताको,
सोक जरा गुजरा न जहाँ कवि बोधा जहाँ उजरा न तहाँ को।
जान मिलै तो जहान मिलै, नहिं जान मिलै तौ जहान कहाँ को,
कबहूँ मिलिबो, कबहूँ मिलिबो, वह धीरज ही में धारैबो करै।
उर ते कढ़ि आवै, गरे ते फिरै, मन की मन ही में सिरैबो करै,
कवि बोधा न चाँड़ सरी कबहूँ, नितही हरवा सो हिरैबो करै।
सहते ही बनै, कहते न बनै, मन ही मन पीर पिरैबो करै,
हिलि मिलि जानै तासों मिलि कै जनावै हेत।
हित को न जानै ताकौ हितू न विसाहिए।
होय मगरूर तापै दूनी मगरूरी कीजै,
लघु ह्वै चलै जो तासों लघुता निबाहिए।
बोधा कवि नीति को निबेरो यही भाँति अहै,
आपको सराहै ताहि आपहू सराहिए।
दाता कहा, सूर कहा, सुंदर सुजान कहा,
आपको न चाहै ताके बाप को न चाहिए।

30. रामचंद्र– इन्होंने अपना कुछ भी परिचय नहीं दिया है। भाषा महिम्न के कर्ता काशीवासी मनियारसिंह ने अपने को 'चाकर अखंडित श्री रामचंद्र पंडित के' लिखा है। मनियारसिंह ने अपना 'भाषा महिम्न' संवत् 1841 में लिखा। अतः इनका समय संवत् 1840 माना जा सकता है। इनकी एक पुस्तक श्चरणचंद्रिका' ज्ञात है। जिसपर इनका सारा यश स्थिर है। यह भक्तिरसात्मक ग्रंथ केवल 62 कवित्तों का है। इसमें पार्वतीजी के चरणों का वर्णन अत्यंत रुचिकर और अनूठे ढंग से किया गया है। इस वर्णन से अलौकिक सुषमा, विभूति, शक्ति और शांति फूटी पड़ती है। उपास्य के एक अंग में अनंत ऐश्वर्य की भावना भक्ति की चरम भावुकता के भीतर ही संभव है। भाषा लाक्षणिक और पांडित्यपूर्ण है। कुछ और अधिक न कहकर इनके दो कवित्त ही सामने रख देना ठीक है,

नूपुर बजत मानि मृग से अधीन होत,
मीन होत जानि चरनामृत झरनि को।
खंजन से नचौं देखि सुषमा सरद की सी,
सचौं मधुकर से पराग केसरनि को।
रीझि रीझि तेरी पदछबि पै तिलोचन के,
लोचन ये, अंब! धारैं केतिक धारनि को।
फूलत कुमुद से मयंक से निरखि नखय,
पंकज से खिलै लखि तरवा तरनि को।
मानिए करींद्र जो हरींद्र को सरोष हरै,
मानिए तिमिर घेरै भानु किरनन को।
मानिए चटक बाज जुर्रा को पटकि मारै,
मानिए झटकि डारै भेक भुजगन को।
मानिए कहै, जो वारिधार पै दवारि औ,
अंगार बरसाइबो बतावै बारिदन को।
मानिए अनेक विपरीत की प्रतीति, पै न,
भीति आई मानिए भवानी – सेवकनको।

31. मंचित– ये मऊ (बुंदेलखंड) के रहनेवाले ब्राह्मण थे और संवत् 1836 में वर्तमान थे। इन्होंने कृष्णचरित संबंधी दो पुस्तकें लिखी हैं, 'सुरभी दानलीला' और 'कृष्णायन'। सुरभी दानलीला में बाललीला, यमलार्जुन पतन और दानलीला का विस्तृत वर्णन सार छंद में किया गया है। इसमें श्रीकृष्ण का नखशिख भी बहुत अच्छा कहा गया है। कृष्णायन तुलसीदास

जी की 'रामायण' के अनुकरण पर दोहों चौपाइयों में लिखी गई है। इन्होंने गोस्वामी जी की पदावली तक का अनुकरण किया है। स्थान-स्थान पर भाषा अनुप्रासयुक्त और संस्कृतगर्भित है, इससे ब्रजवासीदास की चौपाइयों की अपेक्षा इनकी चौपाइयाँ गोस्वामी जी की चौपाइयों से कुछ अधिक मेल खाती हैं। पर यह मेल केवल कहीं कहीं दिखाई पड़ जाता है। भाषा मर्मज्ञ को दोनों का भेद बहुत जल्दी स्पष्ट हो जाता है। इनकी भाषा ब्रज है, अवधी नहीं। उसमें वह सफाई और व्यवस्था कहाँ? कृष्णायन की अपेक्षा इनकी सुरभी दानलीला की रचना अधिक सरस है। दोनों से कुछ अवतरण नीचे दिए जाते हैं,

कुंडल लोल अमोल कान के छुवत कपोलन आवैं।
डुलै आपसे खुलैं जोर छबि बरबस मनहिं चुरावैं,
खौर बिसाल भाल पर सोभित केसर की चित्तभावैं।
ताके बीच बिंदु रोरी के, ऐसो बेस बनावैं,
भ्रकुटी बंक नैन खंजन से कंजन गंजनवारे।
मदभंजन खग मीन सदा जे मनरंजन अनियारे,
(सुरभी दानलीला)

अचरज अमित भयो लखि सरिता।
कृष्णदेव कहँ प्रिय जमुना सी।
अति विस्तार पार पद पावन।
बनचर बनज बिपुल बहु पच्छी।
नाना जिनिस जीव सरि सेवैं।

32. मधुसूदनदास- ये माथुर चौबे थे। इन्होंने गोविंददास नामक किसी व्यक्ति के अनुरोध से संवत् 1839 में 'रामाश्वमेधा' नामक एक बड़ा और मनोहर प्रबंधकाव्य बनाया, जो सब प्रकार से गोस्वामी जी के रामचरितमानस का परिशिष्ट ग्रंथ होने के योग्य है। इसमें श्रीरामचंद्र द्वारा अश्वमेध यज्ञ का अनुष्ठान, घोड़े के साथ गई हुई सेना के साथ सुबाहु, दमन, विद्युन्माली राक्षस, वीरमणि, शिव, सुरथ आदि का घोर युद्ध, अंत में राम के पुत्र लव और कुश के साथ भयंकर संग्राम, श्रीरामचंद्र द्वारा युद्ध का निवारण और पुत्रों सहित सीता का अयोध्या में आगमन, इन सब प्रसंगों का पद्मपुराण के आधार पर बहुत ही विस्तृत और रोचक वर्णन है। ग्रंथ की रचना बिल्कुल रामचरितमानस की शैली पर हुई है। प्रधानता दोहों के साथ

चौपाइयों की है, पर बीच बीच में गीतिका आदि और छंद भी हैं। पदविन्यास और भाषासौष्ठव रामचरितमानस का सा ही है। प्रत्यय और रूप भी बहुत कुछ अवधी के रखे गए हैं। गोस्वामी जी की प्रणाली के उनसरण में मधूसूदनदासजी को पूरी सफलता हुई है। इनकी प्रबंधकुशलता, कवित्वशक्ति और भाषा की शिष्टता तीनों उच्चकोटि की हैं। इनकी चौपाइयाँ अलबत्ता गोस्वामी जी चौपाइयों में बेखटक मिलाई जा सकती हैं। सूक्ष्म दृष्टिवाले भाषामर्मज्ञों को केवल थोड़े ही से ऐसे स्थलों में भेद लक्षित हो सकता है जहाँ बोलचाल की भाषा होने के कारण भाषा का असली रूप अधिक स्फुटित है। ऐसे स्थलों पर गोस्वामी जी के अवधी के रूप और प्रत्यय न देखकर भेद का अनुभव हो सकता है। पर जैसा कहा जा चुका है, पदविन्यास की प्रौढ़ता और भाषा का सौष्ठव गोस्वामी जी के मेल का है।

सिय रघुपति पद कंज पुनीता।
मृदु मंजुल सुंदर सब भाँती।
प्रणत कल्पतरु तर सब ओरा।
त्रिविधा कलुष कुंजर घनघोरा।
चिंतामणि पारस सुरधोनू।
जन-मन मानस रसिक मराला।
निरखि कालजित कोपि अपारा।
महावेगयुत आवै सोई।
अयुत भार भरि भार प्रमाना।
देखि ताहि लव हनि इषु चंडा।
जिमि नभ माँह मेघ समुदाई।
तिमि प्रचंड सायक जनु ब्याला।
भए विकल अति पवन कुमारा।

33. मनियार सिंह ये काशी के रहने वाले क्षत्रिय थे। इन्होंने देवपक्ष में ही कविता की है और अच्छी की है। इनके निम्नलिखित ग्रंथों का पता है, भाषा महिम्न, सौंदर्यलहरी (पार्वती या देवी की स्तुति), हनुमतछबीसी, सुंदरकांड। भाषा महिम्न इन्होंने संवत् 1841 में लिखा। इनकी भाषा सानुप्रास, शिष्ट और परिमार्जित है और उसमें ओज भी पूरा है। ये अच्छे कवि हो गए हैं। रचना के कुछ उदाहरण लीजिए,

मेरो चित्त कहाँ दीनता में अति दूबरो है,
अधरम धूमरो न सुधि के सँभारे पै।
कहाँ तेरी ऋद्धि कवि बुद्धि धारा ध्वनि तें,
त्रिगुण तें परे ह्वै दरसात निरधारे पै।
मनियार यातें मति थकित जकित ह्वै कै,
भक्तिबस धारि उर धीरज बिचारे पै।
बिरची कृपाल वाक्यमाला या पुहुपदंत,
पूजन करन काज करन तिहारे पै।
तेरे पद पंकज पराग राजै राजेश्वरी!
वेद बंदनीय बिरुदावली बढ़ी रहै।
जाकी किनुकाई पाय धाता ने धारित्री रची,
जापे लोक लोकन की रचना कढ़ी रहै।
मनियार जाहि विष्णु सेवैं सर्व पोषत में,
सेस ह्वै के सदा सीस सहस मढ़ी रहै।
सोई सुरासुर के सिरोमनि सदाशिव के,
भसम के रूप ह्वै सरीर पै चढ़ी रहै।
अभय कठोर बानी सुनि लछमन जू की,
मारिबे को चाहि जो सुधारी खल तरवारि।
वीर हनुमंत तेहि गरजि सुहास करि,
उपटि पकरि ग्रीव भूमि लै परे पछारि।
पुच्छ तें लपेटि फेरि दंतन दरदराइ,
नखन बकोटि चोंथि देत महि डारि टारि।
उदर बिदारि मारि लुत्थन को टारि बीर,
जैसे मृगराज गजराज डारे फारि-फारि।

34. कृष्णदास- ये मिरजापुर के रहने वाले कोई कृष्णभक्त जान पड़ते हैं। इन्होंने संवत् 1853 में 'माधुर्य लहरी' नाम की एक बड़ी पुस्तक 420 पृष्ठों की बनाई जिसमें विविधा छंदों में कृष्णचरित का वर्णन किया गया है। कविता इनकी साधारणत: अच्छी है। एक कविता देखिए,

कौन काज लाज ऐसी करै जो अकाज अहो,
बार बार कहो नरदेव कहाँ पाइए।
दुर्लभ समाज मिल्यो सकल सिद्धांत जानि,

लीला गुन नाम धाम रूप सेवा गाइए।
बानी की सयानी सब पानी में बहाय दीजै,
जानी, सो न रीति जासों दंपति रिझाइए।
जैसी जैसी गही जिन लही तैसी नैननहू,
धान्य धान्य राधाकृष्ण नित ही गनाइए

35. गणेश– ये नरहरि बंदीजन के वंश में लाल कवि के पौत्र और गुलाब कवि के पुत्र थे। संवत् 1850 से लेकर 1910 तक वर्तमान थे। ये काशिराज महाराज उदितनारायण सिंह के दरबार में थे और महाराज ईश्वरीप्रसाद नारायण सिंह के समय तक जीवित रहे। इन्होंने तीन ग्रंथ लिखे, (1) वाल्मीकि रामायण श्लोकार्थ प्रकाश (बालकांड समग्र और किषकिंधा के पाँच अध्याय), (2) प्रद्युम्न विजय नाटक, (3) हनुमत पचीसी।

प्रद्युम्नविजय नाटक समग्र पद्यबद्ध है और अनेक प्रकार के छंदों में सात अंकों में समाप्त हुआ है। इसमें दैत्यों के वज्रनाभपुर नामक नगर में प्रद्युम्न के जाने और प्रभावती से गंधर्व विवाह होने की कथा है। यद्यपि इसमें पात्रप्रवेश, विष्कंभक, प्रवेशक आदि नाटक के अंग रखे गए हैं पर इतिवृत्त का भी वर्णन पद्य में होने के कारण नाटकत्व नहीं आया है । एक उदाहरण दिया जाता है,

ताही के उपरांत, कृष्ण इंद्र आवत भए।
भेंटि परस्पर कांत, बैठ सभासद मध्य तहँ,
बोले हरि इंद्र सों बिनै कै कर जोरि दोऊ।
आजु दिगबिजय हमारे हाथ आयो है।
मेरे गुरु लोग सब तोषित भए हैं आजु,
पूरो तप, दान, भाग्य सफल सुहायो है।
कारज समस्त सरे, मंदिर में आए आप,
देवन के देव मोहि धान्य ठहरायो है।
सो सुन पुरंदर उपेंद्र लखि आदर सों,
बोले सुनौ बंधु! दानवीर नाम पायो है।

36. सम्मन ये मल्लावाँ (जिला हरदोई) के रहने वाले ब्राह्मण थे और संवत् 1834 में उत्पन्न हुए थे। इनके नीति के दोहे गिरधार की कुंडलिया के समान गाँवों तक में प्रसिद्ध हैं। इनके कहने के ढंग में कुछ मार्मिकता है। 'दिनों के फेर' आदि के संबंध में इनके मर्मस्पर्शी दोहे स्त्रियों के मुँह से बहुत सुने जाते हैं। इन्होंने संवत् 1879 में 'पिंगल काव्यभूषण' नामक एक

रीतिग्रंथ भी बनाया। पर ये अधिकतर अपने दोहों के लिए ही प्रसिद्ध हैं। इनका रचनाकाल संवत् 1860 से 1880 तक माना जा सकता है। कुछ दोहे देखिए–

निकट रहे आदर घटे, दूरि रहे दुख होय।
सम्मन या संसार में, प्रीति करौ जनि कोय।
सम्मन चहौ सुख देह कौ तौ छाँड़ौ ये चारि।
चोरी, चुगली, जामिनी और पराई नारि।
सम्मन मीठी बात सों होत सबै सुख पूर।
जेहि नहिं सीखो बोलिबो, तेहि सीखो सब धूर।

37. ठाकुर– इस नाम के तीन कवि हो गए हैं जिसमें दो असनी के ब्रह्मभट्ट थे और एक बुंदेलखंड के कायस्थ। तीनों की कविताएँ ऐसी मिल–जुल गई हैं कि भेद करना कठिन है। हाँ, बुंदेलखंडी ठाकुर की वे कविताएँ पहचानी जा सकती हैं जिनमें बुंदेलखंडी कहावतें या मुहावरे आए हैं।

असनी वाले प्राचीन ठाकुर

ये रीतिकाल के आरंभ में संवत् 1700 के लगभग हुए थे। इनका कुछ वृत्त नहीं मिलताय केवल फुटकल कविताएँ इधर उधर पाई जाती हैं। संभव है, इन्होंने रीतिबद्ध रचना न करके अपने मन की उमंग के अनुसार समयसमय पर कवित्त सवैये बनाए हों जो चलती और स्वच्छ भाषा में हैं। इनके ये दो सवैये बहुत सुने जाते हैं,

सजि सूहे दुकूलन बिज्जुछटा सी अटान चढ़ी घटा जोवति हैं।
सुचिती ह्वै सुनैं धुनि मोरन की, रसमाती संयोग सँजोवति हैं।
कवि ठाकुर वै पिय दूरि बसैं, हम आँसुन सों तन धोवति हैं।
धानि वै धनि पावस की रतियाँ पति की छतियाँ लगि सोवति हैं।
बौरे रसालन की चढ़ि डारन कूकत क्वैलिया मौन गहै ना।
ठाकुर कुंजन कुंजन गुंजन भौरन भीर चुपैबो चहै ना।
सीतल मंद सुगंधित, बीर समीर लगे तन धीर रहै ना।
व्याकुल कीन्हों बसंत बनाय कै, जाय कै कंत सों कोऊ कहै ना।

असनी वाले दूसरे ठाकुर

ये ऋषिनाथ कवि के पुत्र और सेवक कवि के पितामह थे। सेवक के भतीजे श्रीकृष्ण ने अपने पूर्वजों का जो वर्णन लिखा है, उसके अनुसार

ऋषिनाथजी के पूर्वज देवकीनंदन मिश्र गोरखपुर जिले के एक कुलीन सरयूपारी ब्राह्मणा, पयासी के मिश्र थे, और अच्छी कविता करते थे। एक बार मँझौली के राजा के यहाँ विवाह के अवसर पर देवकीनंदनजी ने भाटों की तरह कुछ कवित्त पढ़े और पुरस्कार लिया। इस पर उनके भाई-बन्धुओं ने उन्हें जातिच्युत कर दिया और वे असनी के भाट नरहर कवि की कन्या के साथ अपना विवाह करके असनी में जा रहे और भाट हो गए। उन्हीं देवकीनंदन के वंश में ठाकुर के पिता ऋषिनाथ कवि हुए।

ठाकुर ने संवत् 1861 में 'सतसई बरनार्थ' नाम की 'बिहारी सतसई' की एक टीका (देवकीनंदन टीका) बनाई। अतः इनका कविताकाल संवत् 1860 के इधर-उधर माना जा सकता है। ये काशिराज के संबंधी काशी के नामी रईस (जिनकी हवेली अब तक प्रसिद्ध है) बाबू देवकीनंदन के आश्रित थे। इनका विशेष वृत्तांत स्व. पं. अंबिकादत्त व्यास ने अपने 'बिहारी बिहार' की भूमिका में दिया है। ये ठाकुर भी बड़ी सरस कविता करते थे। इनके पद्यों में भाव या दृश्य का निर्वाह अबाध रूप में पाया जाता है। दो उदाहरण लीजिए,

कारे लाज करहे पलासन के पुंज तिन्हैं,
अपने झकोरन झुलावन लगी है री।
ताही को ससेटी तृन पत्रन लपेटी धारा,
धाम तैं अकास धूरि धावन लगी है री।
ठाकुर कहत सुचि सौरभ प्रकाशन मों,
आछी भाँति रुचि उपजावन लगी है री।
ताती सीरी बैहर बियोग वा संयोगवारी,
आवनि बसंत की जनावन लगी है री।
प्रात झुकामुकि भेष छपाय कै गागर लै घर तें निकरी ती।
जानि परी न कितीक अबार है, जाय परी जहँ होरी धारी ती।
ठाकुर दौरि परे मोहिं देखि कै, भागि बची री, बड़ी सुघरी ती।
बीर की सौं जो किवार न देऊँ तौ मैं होरिहारन हाथ परी ती।

तीसरे ठाकुर बुंदेलखंडी

ये जाति के कायस्थ थे और इनका पूरा नाम लाला ठाकुरदास था। इनके पूर्वज काकोरी (जिला, लखनऊ) के रहने वाले थे और इनके पितामह खड्गरायजी बड़े भारी मंसबदार थे। उनके पुत्र गुलाबराय का विवाह बड़ी

धूमधाम से ओरछे (बुंदेलखंड) के रावराजा (जो महाराज ओरछा के मुसाहब थे) की पुत्री के साथ हुआ था। ये ही गुलाबराय ठाकुर कवि के पिता थे। किसी कारण से गुलाबराय अपनी ससुराल ओरछे में ही आ बसे जहाँ संवत् 1823 में ठाकुर का जन्म हुआ। शिक्षा समाप्त होने पर ठाकुर अच्छे कवि निकले और जैतपुर में सम्मान पाकर रहने लगे। उस समय जैतपुर के राजा केसरी सिंहजी थे। ठाकुर के कुल के कुछ लोग बिजावर में भी जा बसे थे। इससे ये कभी वहाँ भी रहा करते थे। बिजावर के राजा ने एक गाँव देकर ठाकुर का सम्मान किया। जैतपुर नरेश राजा केसरी सिंह के उपरांत जब उनके पुत्र राजा पारीछत गद्दी पर बैठे तब ठाकुर उनकी सभा के रत्न हुए। ठाकुर की ख्याति उसी समय से फैलने लगी और वे बुंदेलखंड के दूसरे राजदरबारों में भी आने जाने लगे। बाँदा के हिम्मतबहादुर गोसाईं के दरबार में कभी कभी पद्माकरजी के साथ ठाकुर की कुछ नोंक झोंक की बातें हो जाया करती थीं। एक बार पद्माकरजी ने कहा, 'ठाकुर कविता तो अच्छी करते हैं पर पद कुछ हलके पड़ते हैं।' इस पर ठाकुर बोले, 'तभी तो हमारी कविता उड़ी-उड़ी फिरती है।'

इतिहास में प्रसिद्ध है कि हिम्मतबहादुर कभी अपनी सेना के साथ अंग्रेजों का कार्य साधन करते थे और कभी लखनऊ के नवाब के पक्ष में लड़ते। एक बार हिम्मतबहादुर ने राजा पारीछत के साथ कुछ धोखा करने के लिए उन्हें बाँदे बुलाया। राजा पारीछत वहाँ जा रहे थे कि मार्ग में ठाकुर कवि मिले और दो ऐसे संकेत भरे सवैये पढ़े कि राजा पारीछत लौट गए। एक सवैया यह है,

कैसे सुचित्त भए निकसौ बिहँसौ बिलसौ हरि दै गलबाहीं।
ये छल छिद्रन की बतियाँ छलती छिन एक घरी पल माहीं।
ठाकुर वै जुरि एक भई, रचिहैं परपंच कछू ब्रज माहीं।
हाल चवाइन की दुहचाल की लाल तुम्हें है दिखात कि नाहीं।

कहते हैं कि यह हाल सुनकर हिम्मतबहादुर ने ठाकुर को अपने दरबार में बुला भेजा। बुलाने का कारण समझकर भी ठाकुर बेधाड़क चले गए। जब हिम्मतबहादुर इन पर झल्लाने लगे तब इन्होंने यह कवित्त पढ़ा,

वेई नर निर्नय निदान में सराहे जात,
सुखन अघात प्याला प्रेम को पिए रहैं।
हरि रस चंदन चढ़ाय अंग अंगन में,
नीति को तिलक, बेंदी जस की दिए रहैं।
ठाकुर कहत मंजु कंजु ते मृदुल मन,

मोहनी सरूप, धारे, हिम्मत हिए रहैं।
भेंट भए समये असमये, अचाहे चाहे,
और लौं निबाहैं, ऑखैं एकसी किए रहैं।

इस पर हिम्मतबहादुर ने जब कुछ और कटु वचन कहा तब सुना जाता है कि ठाकुर ने म्यान से तलवार निकाल ली और बोले,

सेवक सिपाही हम उन रजपूतन के,
दान जुद्ध जुरिबे में नेकु जे न मुरके।
नीत देनवारे हैं मही के महीपालन को,
हिए के विसुद्ध हैं, सनेही साँचे उर के।
ठाकुर कहत हम बैरी बेवकूफन के,
जालिम दमाद हैं अदानियाँ ससुर के।
चोजिन के चोजी महा, मौजिन के महाराज,
हम कविराज हैं, पै चाकर चतुर के।

हिम्मतबहादुर यह सुनते ही चुप हो गए। फिर मुस्कारते हुए बोले, 'कविजी बस! मैं तो यही देखना चाहता था कि आप कोरे कवि ही हैं या पुरखों की हिम्मत भी आप में है।' इस पर ठाकुर जी ने बड़ी चतुराई से उत्तर दिया, 'महाराज! हिम्मत तो हमारे ऊपर सदा अनूप रूप से बलिहार रही है, आज हिम्मत कैसे गिर जाएगी?' (गोसाई हिम्मत गिरि का असल नाम अनूप गिरि था, हिम्मतबहादुर शाही खिताब था।)

ठाकुर कवि का परलोकवास संवत् 1880 के लगभग हुआ। अतः इनका कविताकाल संवत् 1850 से 1880 तक माना जा सकता है। इनकी कविताओं का एक अच्छा संग्रह 'ठाकुर ठसक' के नाम से श्रीयुत् लाला भगवानदीनजी ने निकाला है। पर इसमें भी दूसरे दो ठाकुर की कविताएँ मिली हुई हैं। इस संग्रह में विशेषता यह है कि कवि का जीवनवृत्त भी कुछ दे दिया गया है। ठाकुर के पुत्र दरियाव सिंह (चतुर) और पौत्र शंकरप्रसाद भी कवि थे।

ठाकुर बहुत ही सच्ची उमंग के कवि थे। इनमें कृत्रिमता का लेश नहीं। न तो कहीं व्यर्थ का शब्दाडंबर है, न कल्पना की झूठी उड़ान और न अनुभूति के विरुद्ध भावों का उत्कर्ष। जैसे भावों का जिस ढंग से मनुष्य मात्र अनुभव करते हैं वैसे भावों को उसी ढंग से यह कवि अपनी स्वाभाविक भाषा में उतार देता है। बोलचाल की चलती भाषा में भाव को ज्यों का त्यों सामने रख देना इस कवि का लक्ष्य रहा है। ब्रजभाषा कीशृंगारी कविताएँ प्रायः स्त्री पात्रों के ही मुख

की वाणी होती हैं अत: स्थान-स्थान पर लोकोक्तियों का जो मनोहर विधान इस कवि ने किया उनसे उक्तियों में और भी स्वाभाविकता आ गई है। यह एक अनुभूत बात है कि स्त्रियाँ बात बात में कहावतें कहा करती हैं। उनके हृदय के भावों की भरपूर व्यंजना के लिए ये कहावतें मानो एक संचित वाङ्मय हैं। लोकोक्तियों का जैसा मधुर उपयोग ठाकुर ने किया है वैसा और किसी कवि ने नहीं। इन कहावतों में से कुछ तो सर्वत्र प्रचलित हैं और कुछ खास बुंदेलखंड की हैं। ठाकुर सच्चे उदार, भावुक और हृदय के पारखी कवि थे, इसी से इनकी कविताएँ विशेषत: सवैये इतने लोकप्रिय हुए। ऐसा स्वच्छंद कवि किसी क्रम से बद्ध होकर कविता करना भला कहाँ पसंद करता? जब जिस विषय पर जी में आया कुछ कहा।

ठाकुर प्रधानत: प्रेमनिरूपक होने पर भी लोक व्यापार के अनेकांगदर्शी कवि थे। इसी से प्रेमभाव की अपनी स्वाभाविक तन्मयता के अतिरिक्त कभी तो ये अखती, फाग, बसंत, होली, हिंडोरा आदि उत्सवों के उल्लास में मग्न दिखाई पड़ते हैं, कभी लोगों की क्षुद्रता, कुटिलता, दु:शीलता आदि पर क्षोभ प्रकट करते पाए जाते हैं और कभी काल की गति पर खिन्न और उदास देखे जाते हैं। कविकर्म को ये कठिन समझते थे। रूढ़ि के अनुसार शब्दों की लड़ी जोड़ चलने को ये कविता नहीं कहते थे। नमूने के लिए यहाँ इनके थोड़े ही से पद्य दिए जाते हैं,

सीखि लीन्हों मीन मृग खंजन कमल नैन,
सीखि लीन्हों जस औ प्रताप को कहानो है।
सीखि लीन्हों कल्पवृक्ष कामधोनु चिंतामनि,
सीखि लीन्हों मेरु औ कुबेर गिरि आनो है।
ठाकुर कहत याकी बड़ी है कठिन बात,
याको नहिं भूलि कहूँ बाँधियत बानो है।
ढेल सो बनाय आय मेलत सभा के बीच,
लोगन कवित्त कीबो खेल करि जानो है।
दस बार, बीस बार, बरजि दई है जाहि,
एतै पै न मानै जौ तौ जरन बरन देव।
कैसो कहा कीजै कछू आपनो करो न होय,
जाके जैसे दिन ताहि तैसेई भरन देव।
ठाकुर कहत मन आपनो मगन राखो,

प्रेम निहसंक रसरंग बिहरन देव।
बिधि के बनाए जीव जेते हैं जहाँ के तहाँ,
खेलत फिरत तिन्हैं खेलन फिरन देव।
अपने अपने सुठि गेहन में चढ़े दोऊ सनेह की नाव पै री।
अंगनान में भीजत प्रेमभरे, समयो लखि मैं बलि जाऊँ पै री।
कहै ठाकुर दोउन की रुचि सो रंग ह्वै उमड़े दोउ ठाँव पै री।
सखी, कारी घटा बरसे बरसाने पै, गोरी घटा नंदगाँव पै री।
वा निरमोहिनी रूप की रासि जऊ उर हेतु न ठानति ह्वै है।
बारहि बार बिलोकि घरी घरी सूरति तौ पहिचानति ह्वै है।
ठाकुर या मन की परतीति है, जो पै सनेहु न मानति ह्वै है।
आवत हैं नित मेरे लिए, इतनी तो विसेष कै जानति ह्वै है
यह चारहु ओर उदौ मुखचंद की चाँदनी चारु निहारि लै री।
बलि जौ पै अधीन भयो पिय, प्यारी! तौ एतौ बिचार बिचारि लैरी।
कबि ठाकुर चूकि गयो जौ गोपाल तौ तैं बिगरी कौं सभारि लै री।
अब रैहै न रैहै यहै समयो, बहती नदी पाँय पखारि लै री।
पावस में परदेस ते आय मिले पिय औ मनभाई भई है।
दादुर मोर पपीहरा बोलतय ता पर आनि घटा उनई है।
ठाकुर वा सुखकारी सुहावनी दामिनी कौंधा कितै को गई है।
री अब तौ घनघोर घटा गरजौ बरसौ तुम्हैं धूर दई है।
पिय प्यार करैं जेहि पै सजनी तेहि की सब भाँतिन सैयत है।
मन मान करौं तौ परौं भ्रम में, फिर पाछे परे पछतैयत है।
कवि ठाकुर कौन की कासौं कहौं? दिन देखि दसा बिसरैयत है।
अपने अटके सुन ए री भटू! निज सौत के मायके जैयत है।

38. ललकदास- बेनी कवि के भँड़ौवा से ये लखनऊ के कोई कंठीधारी महंत जान पड़ते हैं, जो अपनी शिष्यमंडली के साथ इधर-उधर फिरा करते थे। अत: संवत् 1860 और 1880 के बीच इनका वर्तमान रहना अनुमान किया जा सकता है। इन्होंने 'सत्योपाख्यान' नामक एक बड़ा वर्णनात्मक ग्रंथ लिखा है जिसमें रामचंद्र के जन्म से लेकर विवाह तक की कथा बड़े विस्तार के साथ वर्णित है। इस ग्रंथ का उद्देश्य कौशल के साथ कथा चलाने का नहीं बल्कि जन्म की बधाई, बाललीला, होली, जलक्रीड़ा, झूला, विवाहोत्सव आदि का बड़े ब्योरे और विस्तार के साथ वर्णन करने

का है। जो उद्देश्य महाराज रघुराज सिंह के रामस्वयंवर का है वही इसका भी समझिए। पर इसमें सादगी है और यह केवल दोहों चौपाइयों में लिखा गया है। वर्णन करने में ललकदासजी ने भाषा के कवियों के भाव तो इकट्ठे ही किए हैं, संस्कृत कवियों के भाव भी कहीं कहीं रखे हैं। रचना अच्छी जान पड़ती है। कुछ चौपाइयाँ देखिए,

धारि निज अंक राम को माता।
दंतकुंद मुकुता सम सोहै।
किसलय सधार अधार छबि छाजैं।
सुंदर चिबुक नासिका सौहै।
कामचाप सम भ्रकुटि बिराजै।
यहि बिधि सकल राम के अंगा।

39. खुमान- ये बंदीजन थे और चरखारी (बुंदेलखंड) के महाराज विक्रमसाहि के यहाँ रहते थे। इनके बनाए इन ग्रंथों का पता है

अमरप्रकाश (संवत् 1836), अष्टयाम (संवत् 1852), लक्ष्मणशतक (संवत् 1855), हनुमान नखशिख, हनुमान पंचक, हनुमान पचीसी, नीतिविधान, समरसार (युद्ध यात्रा के मुहूर्त आदि का विचार) नृसिंह चरित्र (संवत् 1879), नृसिंह पचीसी।

इस सूची के अनुसार इनका कविताकाल संवत् 1830 से 1880 तक माना जा सकता है। 'लक्ष्मणशतक' में लक्ष्मण और मेघनाद का युद्ध बड़े फड़कते हुए शब्दों में कहा गया है। खुमान कविता में अपना उपनाम श्मान' रखते थे। नीचे एक कवित्त दिया जाता है,

आयो इंद्रजीत दसकंधा को निबंध बंधा,
बोल्यो रामबंधु सों प्रबंध किरवान को।
को है अंसुमाल, को है काल विकराल,
मेरे सामुहें भए न रहै मान महेसान को,
तू तौ सुकुमार यार लखन कुमार! मेरी,
मार बेसुमार को सहैया घमासान को।
बीर न चितैया, रनमंडल रितैया, काल,
कहर बितैया हौं जितैया मघवान को,

40. नवलसिंह कायस्थ- ये झाँसी के रहनेवाले थे और समथर नरेश राजा हिंदूपति की सेवा में रहते थे। इन्होंने बहुत से ग्रंथों की रचना की है, जो

भिन्नभिन्न विषयों पर और भिन्न भिन्न शैली के हैं। ये अच्छे चित्रकार भी थे। इनका झुकाव भक्ति और ज्ञान की ओर विशेष था। इनके लिखे ग्रंथों के नाम ये हैं,

रासपंचाध्यायी, रामचंद्रविलास, शंकामोचन (संवत् 1873), जौहरिनतरंग (1875), रसिकरंजनी (1877), विज्ञान भास्कर (1878), ब्रजदीपिका (1883), शुकरंभासंवाद (1888), नामचिंतामणि (1903), मूलभारत (1911), भारतसावित्री (1912), भारत कवितावली (1913), भाषा सप्तशती (1917), कवि जीवन (1918), आल्हा रामायण (1922), रुक्मिणीमंगल (1925), मूल ढोला (1925), रहस लावनी (1926), अध्यात्मरामायण, रूपक रामायण, नारी प्रकरण, सीतास्वयंबर, रामविवाहखंड, भारत वार्तिक, रामायण सुमिरनी, पूर्व शृंगारखंड, मिथिलाखंड, दानलोभसंवाद, जन्म खंड।

उक्त पुस्तकों में यद्यपि अधिकांश बहुत छोटी हैं फिर भी इनकी रचना बहुरूपता का आभास देती है। इनकी पुस्तकें प्रकाशित नहीं हुई हैं। अतः इनकी रचना के संबंध में विस्तृत और निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। खोज की रिपोर्टों में उद्धृत उदाहरणों के देखने से रचना इनकी पुष्ट और अभ्यस्त प्रतीत होती है। ब्रजभाषा में कुछ वार्तिक या गद्य भी इन्होंने लिखा है। इनके कुछ पद्य नीचे देखिए,

अभव अनादि अनंत अपारा । अमन, अप्रान, अमर, अविकारा।
अग अनीह आतम अबिनासी । अगम अगोचर अबिरल वासी।
अकथनीय अद्वैत अरामा । अमल असेष अकर्म अकामा।
सगुन सरूप सदा सुषमा निधान मंजु,
बुद्धि गुन गुनन अगाधा बनपति से।
भनै नवलेस फैल्यो बिशद मही में यस,
बरनि न पावै पार झार फनपति से।
जक्त निज भक्तन के कलषु प्रभंजै रंजै,
सुमति बढ़ावै धान धान धानपति से।
अवर न दूजो देव सहस प्रसिद्ध यह,
सिद्धि बरदैन सिद्ध ईस गनपति से।

41. रामसहाय दास– ये चौबेपुर (जिला, बनारस) के रहने वाले लाला भवानीदास कायस्थ के पुत्र थे और काशीनरेश महाराज उदितनारायण सिंह के आश्रय में रहते थे। 'बिहारी सतसई' के अनुकरण पर इन्होंने

'रामसतसई' बनाई। बिहारी के अनुकरण पर बनी हुई पुस्तकों में इसी को प्रसिद्धि प्राप्त हुई। इसके बहुत से दोहे सरस उद्‌भावना में बिहारी के दोहों के पास तक पहुँचते हैं, पर यह कहना कि ये दोहे बिहारी के दोहों में मिलाए जा सकते हैं, रसज्ञता और भावुकता से ही पुरानी दुश्मनी निकालना ही नहीं, बिहारी को भी कुछ नीचे गिराने का प्रयत्न समझा जाएगा। बिहारी में क्या-क्या मुख्य विशेषताएँ हैं यह उनके प्रसंग में दिखाया जा चुका है। जहाँ तक शब्दों की कारीगरी और वाग्वैदग्ध्य से संबंध है वहीं तक अनुकरण करने का प्रयत्न किया गया है और सफलता भी हुई है। पर हावों का वह सुंदर व्यंजना विधान, चेष्टाओं का वह मनोहर चित्रण, भाषा का वह सौष्ठव, संचारियों की वह सुंदर व्यंजना इस सतसई में कहाँ? नकल ऊपरी बातों की हो सकती है, हृदय की नहीं, पर हृदय पहचानने के लिए हृदय चाहिए, चेहरे पर की दो आँखों से ही काम नहीं चल सकता। इस बड़े भारी भेद के होते हुए भी 'रामसतसई'शृंगार रस का उत्तम ग्रंथ है इस सतसई के अतिरिक्त इन्होंने तीन पुस्तकें और लिखी हैं,

वाणीभूषण, वृत्ततरंगिणी (संवत् 1873) और ककहरा।

वाणीभूषण अलंकार का ग्रंथ है और वृत्ततरंगिणी पिंगल का। ककहरा जायसीकी 'अखरावट' के ढंग की छोटी सी पुस्तक है और शायद सबसे पिछली रचना है, क्योंकि इसमें धर्म और नीति के उपदेश हैं। रामसहाय का कविताकाल संवत् 1760से 1880 तक माना जा सकता है। नीचे सतसई के कुछ दोहे उद्‌धृत किए जाते हैं–

गड़े नुकीले लाल के नैन रहैं दिन रैनि।
तब नाजुक ठोढ़ी न क्यों गाड़ परै मृदुबैनि,
भटक न, झटपट चटक कै अटक सुनट के संग।
लटक पीतपट की निपट हटकति कटक अनंग,
लागे नैना नैन में कियो कहा धौ मैन।
नहिं लागै नैना रहैं लागे नैना नैन,
गुलुफनि लगि ज्यों त्यों गयो, करि करि साहस जोर।
फिर न फिरयो मुरवान चपि, चित अति खात मरोर,
यौ बिभाति दसनावली ललना बदन मँझार।
पति को नातो मानि कै मनु आई उडुमार।

42. चंद्रशेखर- ये वाजपेयी थे। इनका जन्म संवत् 1855 में मुअज्जमाबाद (जिला, फतेहपुर) में हुआ था। इनके पिता मनीरामजी भी अच्छे कवि थे। ये कुछ दिनों तक दरभंगे की ओर, फिर 6 वर्ष तक जोधपुर नरेश महाराज मानसिंह के यहाँ रहे। अंत में ये पटियाला नरेश महाराज कर्मसिंह के यहाँ गए और जीवन भर पटियाला में ही रहे। इनका देहांत संवत् 1932 में हुआ। अत: ये महाराज नरेंद्रसिंह के समय तक वर्तमान थे और उन्हीं के आदेश से इन्होंने अपना प्रसिद्ध वीरकाव्य श्हम्मीरहठ' बनाया। इसके अतिरिक्त इनके रचे ग्रंथों के नाम ये हैं,

विवेकविलास, रसिकविनोद, हरिभक्तिविलास, नखशिख, वृंदावनशतक, गृहपंचाशिका, ताजकज्योतिष, माधवी वसंत।

यद्यपिश्रृंगार की कविता करने में भी ये बहुत ही प्रवीण थे पर इनकी कीर्ति को चिरकाल तक स्थिर रखने के लिए 'हम्मीरहठ' ही पर्याप्त है। उत्साह के, उमंग की व्यंजना जैसी चलती स्वाभाविक और जोरदार भाषा में इन्होंने की है उस प्रकार से करने में बहुत ही कम कवि समर्थ हुए हैं। वीररस के वर्णन में इस कवि ने बहुत ही सुंदर साहित्यिक विवेक का परिचय दिया है। सूदन आदि के समान शब्दों की तड़ातड़ और भड़ाभड़ के फेर में न पड़कर उग्रोत्साह व्यंजक उक्तियों का ही अधिक सहारा इस कवि ने लिया है, जो वीररस की जान है। दूसरी बात ध्यान देने की यह है कि वर्णनों के अनावश्यक विस्तार को जिसमें वस्तुओं की बड़ी लंबी-चौड़ी सूची भरी जाती है, स्थान नहीं दिया गया है। सारांश यह है कि वीररस वर्णन की श्रेष्ठ प्रणाली का अनुसरण चंद्रशेखर जी ने किया है।

रही प्रसंगविधान की बात। इस विषय में कवि ने नई उद्भावनाएँ न करके पूर्ववर्ती कवियों का ही सर्वथा अनुसरण किया है। एक रूपवती और निपुण स्त्री के साथ महिमा मंगोल का अलाउद्दीन के दरबार से भागना, अलाउद्दीन का उसे हम्मीर से वापस माँगना, हम्मीर का उसे अपनी शरण में लेने के कारण उपेक्षापूर्वक इनकार करना, ये सब बातें जोधाराज क्या उसके पूर्ववर्ती अपभ्रंश कवियों की ही कल्पना है, जो वीरगाथाकाल की रूढ़ि के अनुसार की गई थी। गढ़ के घेरे के समय गढ़पति की निश्चतता और निर्भीकता व्यंजित करने के लिए पुराने कवि गढ़ के भीतर नाचरंग का होना दिखाया करते थे। जायसी ने अपने पद्मावत में अलाउद्दीन के द्वारा चित्तौरगढ़ के घेरे जाने पर राजा रतनसेन का गढ़ के भीतर नाच कराना और शत्रु के फेंके हुए तीर से नर्तकी का घायल होकर

मरना वर्णित किया है। ठीक उसी प्रकार का वर्णन 'हम्मीरहठ' में रखा गया है। यह चंद्रशेखर की अपनी उद्‌भावना नहीं, एक बँधी हुई परिपाटी का अनुसरण है। नर्तकी के मारे जाने पर हम्मीरदेव का यह कह उठना कि 'हठ करि मंडयो युद्ध वृथा ही' केवल उनके तात्कालिक शोक के आधिक्य की व्यंजना मात्र करता है। उसे करुण प्रलाप मात्र समझना चाहिए। इसी दृष्टि से इस प्रकरण के करुण प्रलाप राम ऐसे सत्यसंध और वीरव्रती नायकों से भी कराए गए हैं। इनके द्वारा उनके चरित्र में कुछ भी लांछन लगता हुआ नहीं माना जाता।

एक त्रुटि हम्मीरहठ की अवश्य खटकती है। सब अच्छे कवियों ने प्रतिनायक के प्रताप और पराक्रम की प्रशंसा द्वारा उससे भिड़नेवाले या उसे जीतने वाले नायक के प्रताप और पराक्रम की व्यंजना की है। राम का प्रतिनायक रावण कैसा था? इंद्र, मरुत, यम, सूर्य आदि सब देवताओं से सेवा लेनेवाला, पर हम्मीरहठ में अलाउद्दीन एक चुहिया के कोने में दौड़ने से डर के मारे उछल भागता है और पुकार मचाता है।

चंद्रशेखर का साहित्यिक भाषा पर बड़ा भारी अधिकार था। अनुप्रास की योजना प्रचुर होने पर भी भद्दी कहीं नहीं हुई, सर्वत्र रस में सहायक ही है। युद्ध, मृगया आदि के वर्णन तथा संवाद आदि सब बड़ी मर्मज्ञता से रखे गए हैं। जिस रस का वर्णन है ठीक उसके अनुकूल पदविन्यास है। जहाँ शृंगार का प्रसंग है वहाँ यही प्रतीत होता है कि किसी सर्वश्रेष्ठ शृंगारी कवि की रचना पढ़ रहे हैं। तात्पर्य यह है कि 'हम्मीरहठ' हिन्दी साहित्य का एक रत्न है। 'तिरिया तेल हम्मीर हठ चढ़ै न दूजी बार' वाक्य ऐसे ही ग्रंथ में शोभा देता है। आगे कविता के कुछ नमूने दिए जाते हैं,

उदै भानु पच्छिम प्रतच्छ, दिन चंद प्रकासै।
उलटि गंग बरु बहै, काम रति प्रीति विनासै,
तजै गौरि अरधांग, अचल ध्रुव आसन चल्लै।
अचल पवन बरु होय, मेरु मंदर गिरिहल्लै,
सुरतरु सुखाय, लोमस मरै, मीर! संक सब परिहरौ।
मुखबचन बीर हम्मीर को बोलि न यह कबहूँटरौ,
आलम नेवाज सिरताज पातसाहन के,
गाज ते दराज कोप नजर तिहारी है।
जाके डर डिगत अडोल गढ़धारी डग,
मगत पहार औ डुलति महि सारी है।

रंक जैसो रहत ससंकित सुरेस भयो,
देस देसपति में अतंक अति भारी है।
भारी गढ़धारी, सदा जंग की तयारी,
धाक मानै ना तिहारी या हमीर हठधारी है।
भागे मीरजादे पीरजादे औ अमीरजादे,
भागे खानजादे प्रान मरत बचाय कै।
भागे गज बाजि रथ पथ न सँभारैं, परैं,
गोलन पै गोल, सूर सहमि सकाय कै।
भाग्यो सुलतान जान बचत न जानि बेगि,
बलित बितुंड पै विराजि बिलखाय कै।
जैसे लगे जंगल में ग्रीषम की आगि,
चलै भागि मृग महिष बराह बिललाय कै।
थोरी थोरी बैसवारी नवल किसोरी सबै,
भोरी भोरी बातन बिहँसि मुख मोरतीं।
बसन बिभूषन बिराजत बिमल वर,
मदन मरोरनि तरकि तन तोरतीं।
प्यारे पातसाह के परम अनुराग रँगी,
चाय भरी चायल चपल दृग जोरतीं।
कामअबला सी, कलाधार की कला सी,
चारु चंपक लता सी चपला सी चित्त चोरतीं।

43. बाबा दीनदयाल गिरि- ये गोसाईं थे। इनका जन्म शुक्रवार वसंतपंचमी, संवत् 1859 में काशी के गायघाट मुहल्ले में एक पाठक के कुल में हुआ था। जब ये 5 या 6 वर्ष के थे तभी इनके माता पिता इन्हें महंत कुशागिरि को सौंप चल बसे। महंत कुशागिरि पंचक्रोशी के मार्ग में पड़नेवाले देहली विनायक स्थान के अधिकारी थे। काशी में महंतजी के और भी कई मठ थे। ये विशेषत: गायघाट वाले मठ में रहा करते थे। जब महंत कुशागिरि के मरने पर बहुत सी जायदाद नीलाम हो गई तब ये देहली विनायक के पास मठोली गाँव वाले मठ में रहने लगे। बाबाजी संस्कृत और हिन्दी दोनों के अच्छे विद्वान थे। बाबू गोपालचंद्र (गिरिधरदास) से इनका बड़ा स्नेह था। इनका परलोकवास संवत् 1915 में हुआ। ये एक अत्यंत सहृदय और भावुक कवि थे। इनकी सी अन्योक्तियाँ हिन्दी के और किसी कवि की

नहीं हुई। यद्यपि इन अन्योक्तियों के भाव अधिकांश संस्कृत से लिये हुए हैं, पर भाषा शैली की सरसता और पदविन्यास की मनोहरता के विचार से वे स्वतंत्र काव्य के रूप में हैं। बाबा जी का भाषा पर बहुत ही अच्छा अधिकार था। इनकी सी परिष्कृत, स्वच्छ और सुव्यवस्थित भाषा बहुत थोड़े कवियों की है। कहीं कहीं कुछ पूरबीपन या अव्यवस्थित वाक्य मिलते हैं, पर बहुत कम। इसी से इनकी अन्योक्तियाँ इतनी मर्मस्पर्शिनी हुई हैं। इनका 'अन्योक्तिकल्पद्रुम' हिन्दी साहित्य में एक अनमोल वस्तु है। अन्योक्ति के क्षेत्र में कवि की मार्मिकता और सौंदर्य भावना के स्फुरण का बहुत अच्छा अवकाश रहता है। पर इसमें अच्छे भावुक कवि ही सफल हो सकते हैं। लौकिक विषयों पर तो इन्होंने सरल अन्योक्तियाँ कही ही हैं। अध्यात्मपक्ष में भी दो-एक रहस्यमयी उक्तियाँ इनकी हैं।

बाबाजी का जैसा कोमल व्यंजक पदविन्यास पर अधिकार था वैसा ही शब्द चमत्कार आदि के विधान पर भी। यमक और श्लेषमयी रचना भी इन्होंने बहुत सी की है। जिस प्रकार ये अपनी भावुकता हमारे सामने रखते हैं उसी प्रकार चमत्कार कौशल दिखाने में भी नहीं चूकते हैं। इससे जल्दी नहीं कहते बनता कि इनमें कलापक्ष प्रधान है या हृदयपक्ष। बड़ी अच्छी बात इनमें यह है कि इन्होंने दोनों को प्रायः अलग अलग रखा है। अपनी मार्मिक रचनाओं के भीतर इन्होंने चमत्कार प्रवृत्ति का प्रवेश प्रायः नहीं होने दिया है। 'अन्योक्तिकल्पद्रुम' के आदि में कई श्लिष्ट पद्य आए हैं पर बीच में बहुत कम। इसी प्रकार अनुरागबाग में भी अधिकांश रचना शब्दवैचित्र्य आदि से मुक्त है। यद्यपि अनुप्रासयुक्त सरस कोमल पदावली का बराबर व्यवहार हुआ है, पर जहाँ चमत्कार का प्रधान उद्देश्य रखकर ये बैठे हैं वहाँ श्लेष, यमक, अंतर्लापिका, बहिर्लापिका सब कुछ मौजूद है। सारांश यह कि ये एक बहुरंगी कवि थे। रचना की विविधा प्रणालियों पर इनका पूर्ण अधिकार था।

इनकी लिखी इतनी पुस्तकों का पता है–

अन्योक्तिकल्पद्रुम (संवत् 1912), अनुरागबाग (संवत् 1888), वैराग्य दिनेश (संवत् 1906), विश्वनाथ नवरत्न और दृष्टांत तरंगिणी (संवत् 1879)।

इस सूची के अनुसार इनका कविताकाल संवत् 1879 से 1912 तक माना जा सकता है। 'अनुरागबाग' में श्रीकृष्ण की विविधा लीलाओं का बड़े ही ललित कवित्तों में वर्णन हुआ है। मालिनीछंद का भी बड़ा मधुर प्रयोग हुआ है। 'दृष्टांत तरंगिणी' में नीतिसंबंधी दोहे हैं। 'विश्वनाथ नवरत्न' शिव की स्तुति है। 'वैराग्य

दिनेश' में एक ओर तो ऋतुओं आदि की शोभा का वर्णन है और दूसरी ओर ज्ञान, वैराग्य आदि का। इनकी कविता के कुछ नमूने दिए जाते हैं,

केतो सोम कला करौ, करौ सुधा को दान।
नहीं चंद्रमणि जो द्रवै यह तेलिया पखान,
यह तेलिया पखान, बड़ी कठिनाई जाकी।
टूटी याके सीस बीस बहु बाँकी टाँकी,
बरनै दीनदयाल, चंद! तुमही चित चेतौ।
कूर न कोमल होहिं कला जो कीजे केतौ,
बरखै कहा पयोद इत मानि मोद मन माहिं।
यह तौ ऊसर भूमि है अंकुर जमिहैं नाहिं,
अंकुर जमिहैं नाहिं बरष सत जौ जल दैहै।
गरजै तरजै कहा? बृथा तेरो श्रम जैहै,
बरनै दीनदयाल न ठौर कुठौरहि परखै।
नाहक गाहक बिना, बलाहक! ह्याँ तू बरखै,
चल चकई तेहि सर विषै, जहँ नहिं रैन बिछोह।
रहत एक रस दिवस ही, सुहृद हंस संदोह।
सुहृद हंस संदोह कोह अरु द्रोह न जाको।
भोगत सुख अंबोह, मोह दुख होय न ताको,
बरनै दीनदयाल भाग बिन जाय न सकई।
पिय मिलाप नित रहै, ताहि सर तू चल चकई,
कोमल मनोहर मधुर सुरताल सने।
नूपुर निनादनि सों कौन दिन बोलि हैं।
नीके मन ही के वृंद वृंदन सुमोतिन को,
गहि कै कृपा की अब चोंचन सो तौलि हैं।
नेम धारि छेम सों प्रमुद होय दीनद्याल,
प्रेम कोकनद बीच कब धौं कलोलि हैं।
चरन तिहारे जदुबंस राजहंस! कब,
मेरे मन मानस में मंद मंद डोलि हैं।
चरन कमल राजैं, मंजु मंजीर बाजैं।
गमन लखि लजावैं, हंसऊ नाहिं पावैं,
सुखद कदमछाहीं, क्रीड़ते कुंज माहीं।

लखि लखि हरि सोभा, चित्त काको न लोभा,
बहु छुद्रन के मिलन तें हानि बली की नाहिं।
जूथ जंबुकन तें नहीं केहरि कहुँ नसि जाहिं,
पराधीनता दुख महा सुखी जगत स्वाधीन।
सुखी रमत सुक बन विषै कनक पींजरे दीन।

44. पजनेस- ये पन्ना के रहनेवाले थे। इनका कुछ विशेष वृत्तांत प्राप्त नहीं। कविताकाल इनका संवत् 1900 के आसपास माना जा सकता है। कोई पुस्तक तो इनकी नहीं मिलती, पर इनकी बहुत सी फुटकल कविता संग्रह ग्रंथों में मिलती और लोगों के मुँह से सुनी जाती है। इनका स्थान ब्रजभाषा के प्रसिद्ध कवियों में है। ठाकुर शिवसिंहजी ने 'मधुरप्रिया' और 'नखशिख' नाम की इनकी दो पुस्तकों का उल्लेख किया है, पर वे मिलती नहीं। भारतजीवन प्रेस ने इनकी फुटकल कविताओं का एक संग्रह 'पजनेस प्रकाश' के नाम से प्रकाशित किया है जिसमें 127 कवित्त-सवैया हैं। इनकी कविताओं को देखने से पता चलता है कि ये फारसी भी जानते थे। एक सवैया में इन्होंने फारसी के शब्द और वाक्य भरे हैं। इनकी रचना शृंगाररस की ही है, पर उसमें कठोर वर्णों (जैसे ट, ठ, ड) का व्यवहार यत्र तत्र बराबर मिलता है। ये 'प्रतिकूलवर्णन' की परवाह कम करते थे। पर इसका तात्पर्य यह नहीं कि कोमल अनुप्रासयुक्त ललित भाषा का व्यवहार इनमें नहीं है। पदविन्यास इनका अच्छा है। इनके फुटकल कवित्त अधिकतर अंगवर्णन के मिलते हैं जिससे अनुमान होता है कि इन्होंने कोई नखशिख लिखा होगा। शब्दचमत्कार पर इनका ध्यान विशेष रहता था, जिससे कहीं-कहीं कुछ भद्दापन आ जाता था। कुछ नमूने देखिए,

छहरै छबीली छटा छूटि छितिमंडल पै,
उमग उजेरो महाओज उजबक सी।
कवि पजनेस कंज मंजुल मुखी के गात,
उपमाधिकाति कल कुंदन तबक सी।
फैली दीप दीप दीप दीपति दीपति जाकी।
दीपमालिका की रही दीपति दबक सी।
परत न ताब लखि मुख माहताब जब,
निकसी सिताब आफताब की भभक सी,
पजनेस तसद्दुक ता बिसमिल जुल्फष फुरकत न कबूल कसे।

महबूब चुनाँ बदमस्त सनम अजश्दस्त अलाबल जुल्फ फँसे,
मजमूए, न काफष् शिगाफष् रुए सम क्यामत चश्म से खूँ बरसे।
मिजश्गाँ सुरमा तहरीर दुताँ नुकते, बिन बे, किन ते, किन से।

45. गिरिधरदास– ये भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र के पिता थे और ब्रजभाषा के बहुत ही प्रौढ़ कवि थे। इनका नाम तो बाबू गोपालचंद्र था पर कविता में अपना उपनाम ये 'गिरिधरदास', 'गिरधार', 'गिरिधरन' रखते थे। भारतेंदु ने इनके संबंध में लिखा है कि 'जिन श्री गिरिधरदास कवि रचे ग्रंथ चालीस'। इनका जन्म पौष कृष्ण 15, संवत् 1890 को हुआ। इनके पिता काले हर्षचंद, जो काशी के एक बड़े प्रतिष्ठित रईस थे इन्हें ग्यारह वर्ष की अवस्था में ही छोड़कर परलोक सिधारे। इन्होंने अपने निज के परिश्रम से संस्कृत और हिन्दी में बड़ी स्थिर योग्यता प्राप्त की और पुस्तकों का एक बहुत बड़ा अनमोल संग्रह किया। पुस्तकालय का नाम इन्होंने 'सरस्वती भवन' रखा जिसका मूल्य स्वर्गीय डॉ. राजेंद्र लाल मित्र एक लाख रुपया तक दिलवाते थे। इनके यहाँ उस समय के विद्वानों और कवियों की मंडली बराबर जमी रहती थी और इनका समय अधिकतर काव्यचर्चा में ही जाता था। इनका परलोकवास संवत् 1917 में हुआ।

भारतेंदुजी ने इनके लिखे 40 ग्रंथों का उल्लेख किया है जिनमें बहुतों का पता नहीं। भारतेंदु के दौहित्र, हिन्दी के उत्कृष्ट लेखक श्रीयुत् बाबू ब्रजरत्नदासजी हैं जिन्होंने अपनी देखी हुई इन अठारह पुस्तकों के नाम इस प्रकार दिए हैं,

जरासंधवध महाकाव्य, भारतीभूषण (अलंकार), भाषा व्याकरण (पिंगल संबंधी), रसरत्नाकर, ग्रीष्म वर्णन, मत्स्यकथामृत, वराहकथामृत, नृसिंहकथामृत, वामनकथामृत, परशुरामकथामृत, रामकथामृत, बलराम कथामृत, कृष्णचरित (4701 पदों में), बुद्ध कथामृत, कल्किकथामृत, नहुष नाटक, गर्गसंहिता, (कृष्णचरित का दोहे चौपाइयों में बड़ा ग्रंथ), एकादशी माहात्म्य।

इनके अतिरिक्त भारतेंदुजी के एक नोट के आधार पर स्वर्गीय बाबू राधाकृष्णदास ने इनकी 21 और पुस्तकों का उल्लेख किया है,

वाल्मीकि रामायण (सातों कांड पद्यानुवाद), छंदार्णव, नीति, अद्भुत रामायण, लक्ष्मीनखशिख, वार्ता संस्कृत, ककारादिसहस्रनाम, गयायात्रा, गयाष्टक, द्वादशदलकमल, कीर्तन, संकर्षणाष्टक, दनुजारिस्त्रोत, गोपालस्त्रोत, भगवतस्त्रोत, शिवस्त्रोत, श्री रामस्त्रोत, श्री राधास्त्रोत, रामाष्टक, कालियकालाष्टक।

इन्होंने दो ढंग की रचनाएँ की हैं। गर्गसंहिता आदि भक्तिमार्ग की कथाएँ तो सरल और साधारण पद्यों में कही हैं, पर काव्यकौशल की दृष्टि से जो रचनाएँ की हैं जैसे जरासंधवध, भारतीभूषण, रसरत्नाकर, ग्रीष्मवर्णन, ये यमक और अनुप्रास आदि से इतनी लदी हुई हैं कि बहुत स्थलों पर दुरूह हो गई हैं। सबसे अधिक इन्होंने यमक और अनुप्रास का चमत्कार दिखाया है। अनुप्रास और यमक का ऐसा विधान जैसा जरासंधवध में है और कहीं नहीं मिलेगा। जरासंधवध अपूर्ण है, केवल 11 सर्गों तक लिखा गया है, पर अपने ढंग का अनूठा है। जो कविताएँ देखी गई हैं उनसे यही धारणा होती है कि इनका झुकाव चमत्कार की ओर अधिक था। रसात्मकता इनकी रचनाओं में वैसी नहीं पाई जाती। अट्ठाइस वर्ष की ही आयु पाकर इतनी अधिक पुस्तकें लिख डालना पद्य रचना का अद्‌भुत अभ्यास सूचित करता है। इनकी रचना के कुछ नमूने नीचे दिए जाते हैं।

(जरासंध वध से)

चल्यो दरद जेहि फरद रच्यो बिधि मित्र दरद हर।
सरद सरोरुह बदन जाचकन बरद मरद बर,
लसत सिंह सम दुरद नरद दिसि दुरद अरद कर।
निरखि होत अरि सरद, हरद, सम जरद कांति धार,
कर करद करत बेपरद जब गरद मिलत बपु गाज को।
रन जुआ नरद वित नृप लस्यो करद मगध महराज को,
सबके सब केशव के सबके हित के गज सोहते सोभा अपार हैं।
जब सैलन सैलन सैलन ही फिरैं सैलन सैलहि सीस प्रहार हैं।
श्गिरिधरन' धारन सों पद कंज लै धारन लै बसु धारन फार हैं।
अरि बारन बारन बारन पै सुर वारन वारन वारन वार हैं।

(भारती भूषण से)

असंगति, सिंधु जनित गर हर पियो, मरे असुर समुदाय।
नैन बान नैनन लग्यो, भयो करेजे घाय ।

(रसरत्नाकर से)

जाहि बिबाहि दियो पितु मातु नै पावक साखि सबै जन जानी।
साहब से श्गिरिधरन जू' भगवान समान कहै मुनि ज्ञानी।
तू जो कहै वह दच्छिन है तो हमैं कहा बाम हैं, बाम अजानी।
भागन सों पति ऐसो मिलै सबहीन को दच्छिन जो सुखदानी।

(ग्रीष्मवर्णन से)

जगह जड़ाऊ जामे जड़े हैं जवाहिरात,
जगमग जोति जाकी जग में जमति है।
जामे जदुजानि जान प्यारी जात:प ऐसी,
जगमुख ज्वाल ऐसी जोन्ह सी जगति है।
'गिरिधरदास' जोर जबर जवानी को है,
जोहि जोहि जलजा हू जीव में जकति है।
जगत के जीवन के जिय को चुराए जोय,
जोए जोषिता को जेठ जरनि जरति है।

46. द्विजदेव (महाराज मानसिंह)- ये अयोध्या के महाराज थे और बड़ी ही सरस कविता करते थे। ऋतुओं के वर्णन इनके बहुत ही मनोहर हैं। इनके भतीजे भुवनेश जी (श्री त्रिलोकीनाथ जी, जिनसे अयोध्या नरेश ददुआ साहब से राज्य के लिए अदालत हुई थी) ने द्विजदेव जी की दो पुस्तकें बताई हैं, 'शृंगारबत्तीसी' और 'शृंगारलतिका'।'शृंगारलतिका' का एक बहुत ही विशाल और सटीक संस्करण महारानी अयोध्या की ओर से हाल में प्रकाशित हुआ है। इसके टीकाकार हैं भूतपूर्व अयोध्या नरेश महाराज प्रतापनारायण सिंह। 'शृंगारबत्तीसी' भी एक बार छपी थी। द्विजदेव के कवित्त काव्यप्रेमियों में वैसे ही प्रसिद्ध हैं जैसे पद्माकर के। ब्रजभाषा के शृंगारी कवियों की परंपरा में इन्हें अंतिम प्रसिद्ध कवि समझना चाहिए। जिस प्रकार लक्षण ग्रंथ लिखने वाले कवियों में पद्माकर अंतिम प्रसिद्ध कवि हैं उसी प्रकार समूचीशृंगार परंपरा में ये। इनकी सी सरस और भावमयी फुटकलशृंगारी कविता फिर दुर्लभ हो गई।

इनमें बड़ा भारी गुण है भाषा की स्वच्छता। अनुप्रास आदि चमत्कारों के लिए इन्होंने भाषा भद्दी कहीं नहीं होने दी है। ऋतुवर्णनों में इनके हृदय का उल्लास उमड़ पड़ता है। बहुत से कवियों के ऋतुवर्णन हृदय की सच्ची उमंग का पता नहीं देते, रस्म सी अदा करते जान पड़ते हैं। पर इनके चकोरों की चहक के भीतर इनके मन की चहक भी साफ झलकती है। एक ऋतु के उपरांत दूसरी ऋतु के आगमन पर इनका हृदय अगवानी के लिए मानो आप से आप आगे बढ़ता था। इनकी कविता के कुछ नमूने नीचे दिए जाते हैं,

मिलि माधावी आदिक फूल के ब्याज विनोद-लवा बरसायो करैं।
रचि नाच लतागन तानि बितान सबै विधि चित्त चुरायो करैं।
द्विजदेव जू देखि अनोखी प्रभा अलिचारन कीरति गायो करैं।

चिरजीवो बसंत! सदा द्विजदेव प्रसूननि की झरि लायो करैं।
सुर ही के भार सूधो सबद सुकीरन के,
मंदिरन त्यागि करैं अनत कहूँ न गौन।
द्विजदेव त्यौं ही मधुभारन अपारन सों,
नेकु झुकि झूमि रहै मोगरे मरुअ दौन।
खोलि इन नैनन निहारौं तौ निहारौं कहा?
सुषमा अभूत छाय रही प्रति भौन भौन।
चाँदनी के भारन दिखात उनयो सो चंद,
गंधा ही के भारन बहत मंद मंद पौन।
बोलि हारे कोकिल, बुलाय हारे केकीगन,
सिखै हारी सखी सब जुगुति नई नई।
द्विजदेव की सौं लाज बैरिन कुसंग इन,
अंगन हू आपने अनीति इतनी ठई।
हाय इन कुंजन तें पलटि पधारे स्याम,
देखन न पाई वह मूरति सुधामई।
आवन समै में दुखदाइनि भई री लाज,
चलत समैं में चल पलन दगा दई।
आजु सुभायन ही गई बाग, बिलोकि प्रसून की पाँति रही पगि।
ताहि समय तहँ आये गोपाल, तिन्हें लखि औरौ गयो हियरो ठगि,
पै द्विजदेव न जानि परयो धौं कहा तेहि काल परे अंसुवा जगि।
तू जो कही सखि! लोनो सरूप सो मो अंखियान कों लोनी गईलगि,
बाँके संकहीने राते कंज छबि छीने माते,
झुकि झुकि, झूमि झूमि काहू को कछू गनैन।
द्विजदेव की सौं ऐसी बनक बनाय बहु,
भाँतिन बगारे चित चाहन चहूँधा चैन।
पेखि परे प्रात जौ पै गातिन उछाह भरे,
बार बार तातें तुम्हैं बूझती कछूक बैन।
एहो ब्रजराज! मेरो प्रेमधान लूटिबे को,
बीरा खाय आये कितै आपके अनोखे नैन।
भूले भूले भौंर बन भाँवरें भरैंगे चहूँ,
फूलि फूलि किंसुक जके से रहि जाय हैं।

द्विजदेव की सौं वह कूजन बिसारि कूर,
कोकिल कलंकी ठौर ठौर पछिताय हैं।
आवत बसंत के न ऐहैं, जो पै स्याम तौ पै,
बावरी! बलाय सों हमारेऊ उपाय हैं।
पीहैं पहिलेई तें हलाहल मँगाय या,
कलानिधि की एकौ कला चलन न पाय हैं,
घहरि घहरि घन सघन चहूँधा घेरि,
छहरि छहरि विष बूँद बरसावै ना।
द्विजदेव की सौं अब चूक मत दाँव, एरे,
पातकी पपीहा! तू पिया की धुनि गावै ना।
फेरि ऐसो औसर न ऐहै तेरे हाथ, एरे,
मटकि मटकि मोर सोर तू मचावै ना।
हौं तौ बिन प्रान, प्रान चाहत तजोई अब,
कत नभ चंद तू अकास चढ़ि धावै ना।

4

रीतिकाल की प्रमुख विशेषताएँ

भक्ति औरशृंगार की विभाजक रेखा सूक्ष्म है। भक्ति की अनुभूति को व्यक्त करने के लिए बहुत बार राधा-कृष्ण के चरित्र एवं दाम्पत्य जीवन के विविध प्रतीकों का सहारा लिया गया. कबीर जैसे बीहड़ कवि भी भाव-विभोर हो कह उठते हैं: "हरि मोरा पिउ मैं हरि की बहुरिया" मर्यादावादी तुलसी भी निकटता को व्यक्त करने के लिए "कामिनि नारि पिआरि जिमि" जैसी उपमा देते हैं। कालांतर में राधा-कृष्ण के चरित्र अपने रूप से हट गए और वे महज दांपत्य जीवन के प्रतीक बन कर रह गए। प्रेम और भक्ति की संपृक्त अनुभूति में से भक्ति क्रमशः क्षीण पड़ती गई और प्रेमशृंगारिक रूप में केन्द्र में आ गया। भक्ति काल का रीतिकाल में रूपांतरण की यही प्रक्रिया है।

रीतिकालीन काव्य की मूल प्रेरणा ऐहिक है। भक्तिकाल की ईश्वर-केन्द्रित दृष्टि के सामने इस मानव केन्द्रित दृष्टि की मौलिकता एवं साहसिकता समझ में आती है। आदिकालीन कवि अपने नायक को ईश्वर के जैसा महिमावान अंकित किया था। भक्त कवियों ने ईश्वर की नर लीला का चित्रण किया, तो रीतिकालीन कवियों ने ईश्वर एवं मनुष्य दोनों का मनुष्य रूप में चित्रण किया। भक्त कवि तुलसीदास लिखते हैं:

कवि न होउँ नहिं चतुर कहावउँ,
मति अनुरूप राम गुन गाउँ।

परन्तु भिखारीदास का कहना है:

आगे की कवि रीझिहैं तौ कविताई, न तौ,
राधिका कन्हाई सुमिरन को बहानो हैं।

एक के लिए भक्ति प्रधान है, इस प्रक्रिया में कविता भी बन जाए तो अच्छा है। कवि तो राम का गुण-गान करता है। वहीं दूसरे के लिए कविता की रचना महत्त्वपूर्ण है। यदि कविता न बन सके तो उसे राधा-कृष्ण का स्मरण मान लिया जाए। सम्पूर्ण रीति साहित्य को तीन वर्गों में विभक्त किया गया है। रीतिबद्ध, रीतिसिद्ध और रीतिमुक्त वास्तव में रीतिबद्ध कवि रीतिसिद्ध भी थे और रीतिसिद्ध कवि रीतिबद्ध भी। इस युग के राजाश्रित कवियों में से अधिकांश तथा जनकवियों में से कतिपय ऐसे थे जिन्होंने आत्मप्रदर्शन की भावना या काव्य-रसिक समुदाय को काव्यांगों का सामान्य ज्ञान कराने के लिए रीतिग्रंथों का प्रणयन किया। अत: इनकी सबसे प्रमुख विशेषता व प्रवृत्ति रीति-निरूपण की ही थी। इसके साथ ही आश्रयदाताओं को प्रसन्न करने के लिएश्रृंगारिक रचनाएँ भी की। अत:श्रृंगारिकता भी इस युग की प्रमुख प्रवृत्ति थी। इधर आश्रयदाता राजाओं के दान, पराक्रम आदि को आलंकारिक करने से उन्हें धन-सम्मान मिलता था। वहीं धार्मिक संस्कारों के कारण भक्तिपरक रचनाएँ करने से आत्म लाभ होता था। इस प्रकार राज-प्रशस्ति एवं भक्ति भी इनकी इनकी प्रवृत्तियों के रूप में परिगणित होती है। दूसरी ओर इन कवियों ने अपने कटु-मधुर व्यक्तिगत अनुभवों को भी समय-समय पर नीतिपरक अभिव्यक्ति प्रदान किया। अत: नीति इनकी कविता का अंग कही जा सकती है।

डॉ. नगेन्द्र ने रीति-कवियों की प्रवृत्तियों को दो वर्गों में रखा है:

क. मुख्य प्रवृत्ति

ख. गौण प्रवृत्ति

मुख्य प्रवृत्तियों को दो वर्गों में विभाजित किया है:

1. रीति-निरूपण
2. श्रृंगारिकता

और गौण प्रवृत्तियों को तीन भागों में बांटा है:

1. राजप्रशस्ति या वीर काव्य
2. भक्ति
3. नीति

रीति-निरूपण-

रीतिकालीन कवियों के रीति-निरूपण की शैलियों का अध्ययन करने पर तीन दृष्टियाँ दृष्टिगोचर होती हैं।

प्रथम दृष्टि तो मात्र रीति-कर्म की है। इनमें वे ग्रंथ आते हैं जिनमें सामान्य रूप से काव्यांग-विशेष का परिचय कराना ही कवि का उद्देश्य है, अपने कवित्व का परिचय देना नहीं. ऐसे ग्रंथों में लक्षण के साथ उदाहरण या तो अन्य रचनाकारों के काव्य से दिया गया है या इतना संक्षिप्त है कि कवित्व जैसी कोई बात ही नहीं है। राजा जसवंत सिंह का 'भाषाभूषण', गोविंद का 'कर्णाभरण', रसिक सुमति का 'अलंकार चंद्रोदय', दूलह का 'कविकुलकंठाभरण' आदि इसी प्रवृत्ति के परिचायक ग्रंथ हैं।

द्वितीय प्रवृत्ति में रीति-कर्म और कवि-कर्म का समान महत्त्व रहा है। इसके अंतर्गत लक्षण एवं उदाहरण दोनों उनके रचयिताओं द्वारा रचित है तथा उदाहरण में सरसता का पुट मिला हुआ है। देव, मतिराम, केशव, पद्माकर, कुलपति, भूषण आदि के ग्रंथ इसी श्रेणी में आते हैं।

तीसरी प्रवृत्ति के अंतर्गत लक्षणों को महत्त्व नहीं दिया गया है। कवियों ने प्राय: सभी छंदों की रचना काव्यशास्त्र के नियमों से बद्ध होकर ही किया है लेकिन लक्षणों को त्याग दिया है। बिहारी, मतिराम आदि की सतसइयाँ, नख-सिख वर्णन संबंधी समस्त ग्रंथ इसी कोटि की रचनाएँ हैं।

काव्यांग-विवेचन के आधार पर इसकी दो अंत: प्रवृत्तियाँ ठहरती हैं।

1. सर्वांग विवेचन
2. विशिष्टांग विवेचन

सर्वांग विवेचन प्रवृत्ति के अंतर्गत आनेवाले ग्रंथों में कवियों ने सामान्यत: काव्य-हेतु, काव्य-लक्षण, काव्य-प्रयोजन, काव्य-भेद, काव्यशक्ति, काव्य-रीति, अलंकार, छंद आदि का निरूपण किया है। चिंतामणि का 'कविकुलकल्पत:', देव का 'शब्दरसायन', कुलपति का 'रसरहस्य', भिखारीदास का 'काव्य-निर्णय' आदि इसी प्रवृत्ति के ग्रंथ हैं।

विशिष्टांग विवेचन की प्रवृत्ति के अंतर्गत वे ग्रंथ आते हैं जिनमें किसी एक या दो या तीन का विवेचन किया गया है। ये विषय हैं: रस, छंद और अलंकार. इनमें रस-निरूपण की प्रवृत्ति इन कवियों में सर्वाधिक देखने को मिलती है।शृंगार को रसराज के रूप में निरूपित करने का भाव सर्वाधिक है।

विवेचन-शैली के आधार पर इस काल में रीति-निरूपण की मुख्य तीन शैलियां प्रचलित हैं।

प्रथम 'काव्यप्रकाश'-'साहित्यदर्पण' की शैली है। इसके अंतर्गत चिंतामणि के 'कविकुलकल्पत:', देव का 'शब्दरसायन', भिखारीदास का 'काव्य-निर्णय'

आदि को रखा जाता है। इसमें मम्मट-विश्वनाथ द्वारा दी गई संस्कृत-गद्य की वृत्ति के समान ब्रजभाषा गद्य की वृत्ति देकर विषय को समझाया गया है।

दूसरी शैली 'चन्द्रालोक'-'कुवलयानंद' की संक्षिप्त शैली है। जसवंत सिंह की 'भाषाभूषण', गोविंद का 'कर्णाभरण', पद्माकर का 'पद्माभरण', दूलह का 'कविकुलकंठाभरण' आदि इस शैली के ग्रंथ हैं।

तीसरी शैली भानुदत्त की 'रसमंजरी' की है। इसमें लक्षण एवं सरस उदाहरण देकर विषय-निरूपण किया गया है।

शृंगारिकता

शृंगारिकता की प्रवृत्ति रीतिकवियों का प्राण है। एक ओर काव्यशास्त्रीय बंधनों का निर्वाह और दूसरी ओर नैतिक बंधनों की छूट तथा विलासी आश्रयदाताओं के प्रोत्साहन के कारण इस प्रवृत्ति ने जो स्वरूप ग्रहण किया, उसे दूसरे कवियों कीशृंगारिकता से पृथक करके देखा जा सकता है।

शास्त्रीय बंधनों ने इतना रूढ़ बना दिया है किशृंगार के विभाव पक्ष में नायक-नायिका के भेद तथा उद्दीपक सामग्री के प्रत्येक अंग, अनुभवों के विविध रूप, वियोग के भेदोपभेद-सहित विभिन्न कामदशाओं संबंधी रचनाओं के अलग-अलग वर्ग बनाये जा सकते हैं।

दूसरी ओर नैतिक बंधनों की छूट एवं आश्रयदाताओं के प्रोत्साहन के कारण ये कवि अपनी कल्पना के पंख इतने फैला सके हैं कि शास्त्रीय घेरे के भीतर निर्माताओं की अभिरुचि एंव दृष्टि की व्यंजना उनकी इस प्रवृत्ति की विशेषता प्रकट हो जाती है। इन कवियों कीशृंगार भावना में दमन से उत्पन्न किसी प्रकार की कुंठा न होकर शरीर-सुख की वह साधना है जिसमें विलास के सभी उपकरणों के संग्रह की ओर व्यक्ति की दृष्टि केन्द्रित होती है। इनके प्रेम-भावना में एकोन्मुखता का स्थान अनेकोन्मुखता ने इस प्रकार ले लिया है कि कुंठारहित प्रेम की उन्मुक्तता व रसिकता का रूप धारण कर गई है। यही कारण है कि उनके पत्नियों के बीच अकेला नायक किसी मानसिक तनाव का शिकार नहीं होता बल्कि निर्द्वन्द्व होकर भोगने में ही जीवन की सार्थकता समझता है।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि रीतिकवियों कीशृंगारिकता में सामान्य रूप से कुंठाहीनता, शारीरिक सुख की साधना, अनेकोन्मुख प्रेमजन्य रूपलिप्सा, भोगेच्छा, नारी के प्रति सामंती दृष्टिकोण आदि शास्त्रीय बंधनों में बँधकर भी पाठकों को आत्मविभोर कर सकती हैं।

राजप्रशस्ति

यह प्रवृत्ति आश्रयदाताओं की दान-वीरता और युद्धवीरता के वर्णन में दृष्टिगोचर होती है। इनकी अभिव्यक्ति में सामान्य रूप से दान की सामग्री की प्रचुरता और आश्रयदाताओं के आतंक के प्रभाव के वर्णनों के कारण वैसा रसात्मक प्रभाव नहीं डाल पाती। यह राजाओं की झूठी प्रशस्ति का ही प्रभाव छोड़ता है। इनमें उत्साह का अभाव ही रहा है।

भक्ति

भक्ति की प्रवृत्ति ग्रंथों के मंगलाचरणों, ग्रंथों की समाप्ति पर आशीर्वचनों, भक्ति एवं शांत रस के उदाहरणों में मिलती है। ये कवि राम-कृष्ण के साथ गणेश, शिव और शक्ति में समान श्रद्धा व्यक्त करते पाये जाते हैं। अतः यह माना जा सकता है कि किसी विशेष सम्प्रदाय के अनुयायी होते हुए भी धार्मिक कट्टरता नहीं थी. वास्तव में इय समय भक्ति धार्मिकता का परिचायक नहीं थी बल्कि विलास से जर्जर दरबारी वातावरण से बाहर आकुल मन की शरणभूमि थी।

नीति

भक्ति इनके आकुल मन शरणस्थली थी तो नीति-निरूपण दरबारी जीवन के घात-प्रतिघात से उत्पन्न मानसिक द्वन्द्व के विरेचन के लिए शाँति का आधार। यही कारण है कि आत्मोपदेशों में इनके वैयक्तिक अनुभवों की छाप प्रायरू देखने को मिल जाती है।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि गौण-प्रवृत्तियों में राज प्रशस्ति की प्रवृत्ति,श्रृंगारी प्रवृत्ति के समान उस युग के दरबारी जीवन में 'प्रवृत्ति' की परिचायक है, जबकि भक्ति एंव नीति ने उससे निवृत्ति की।

5

रीतिबद्ध काव्य की विशेषताएँ

रीतिकाल के कवि राजाओं और रईसों के आश्रय में रहते थे। वहाँ मनोरंजन और कलाविलास का वातावरण स्वाभाविक था। बौद्धिक आनंद का मुख्य साधन वहाँ उक्तिवैचित्र्य समझा जाता था। ऐसे वातावरण में लिखा गया साहित्य अधिकतर शृंगारमूलक और कलावैचित्र्य से युक्त था। पर इसी समय प्रेम के स्वच्छंद गायक भी हुए जिन्होंने प्रेम की गहराइयों का स्पर्श किया है। मात्रा और काव्यगुण दोनों ही दृष्टियों से इस समय का नर-नारी-प्रेम और सौंदर्य की मार्मिक व्यंजना करने वाला काव्यसाहित्य महत्त्वपूर्ण है।

इस समय वीरकाव्य भी लिखा गया। मुगल शासक औरंगजेब की कट्टर सांप्रदायिकता और आक्रामक राजनीति की टकराहट से इस काल में जो विक्षोभ की स्थितियाँ आई, उन्होंने कुछ कवियों को वीरकाव्य के सृजन की भी प्रेरणा दी। ऐसे कवियों में भूषण प्रमुख हैं, जिन्होंने रीतिशैली को अपनाते हुए भी वीरों के पराक्रम का ओजस्वी वर्णन किया। इस समय नीति, वैराग्य और भक्ति से संबंधित काव्य भी लिखा गया। अनेक प्रबंधकाव्य भी निर्मित हुए। इधर के शोधकार्य में इस समय कीशृंगारेतर रचनाएँ और प्रबंधकाव्य प्रचुर परिमाण में मिल रहे हैं। इसलिए रीतिकालीन काव्य को नितांत एकांगी और एकरूप समझना उचित नहीं है। इस समय के काव्य में पूर्ववर्ती कालों की सभी प्रवृत्तियाँ सक्रिय हैं। यह प्रधान धारा शृंगारकाव्य की है, जो इस समय की काव्यसंपत्ति का वास्तविक निदर्शक मानी जाती रही है।शृंगारी काव्य तीन वर्गों में विभाजित किया जाता है। पहला वर्ग रीतिबद्ध कवियों का है जिसके प्रतिनिधि केशव, चिंतामणि, भिखारीदास, देव, मतिराम और पद्माकर आदि हैं। इन कवियों ने दोहों में रस,

अलंकार और नायिका के लक्षण देकर कवित्त सवैए में प्रेम और सौंदर्य की कलापूर्ण मार्मिक व्यंजना की है। संस्कृत साहित्यशास्त्र में निरूपित शास्त्रीय चर्चा का अनुसरण मात्रा इनमें अधिक है। पर कुछ ने थोड़ी मौलिकता भी दिखाई है, जैसे भिखारीदास का हिंदी छंदों का निरूपण। दूसरा वर्ग रीतिसिद्ध कवियों का है। इन कवियों ने लक्षण नहीं निरूपित किए, केवल उनके आधार पर काव्यरचना की। बिहारी इनमें सर्वश्रेष्ठ हैं, जिन्होंने दोहों में अपनी सतसई प्रस्तुत की। विभिन्न मुद्राओं वाले अत्यंत व्यंजक सौंदर्यचित्रों और प्रेम की भावदशाओं का अनुपम अंकन इनके काव्य में मिलता है। तीसरे वर्ग में घनानंद, बोधा, द्विजदेव ठाकुर आदि रीतिमुक्त कवि आते हैं जिन्होंने स्वच्छंद प्रेम की अभिव्यक्ति की है। इनकी रचनाओं में प्रेम की तीव्रता और गहनता की अत्यंत प्रभावशाली व्यंजना हुई है।

रीतिकाव्य मुख्यतः मांसलशृंगार का काव्य है। इसमें नर-नारीजीवन के रमणीय पक्षों का सुंदर उद्घाटन हुआ है। अधिक काव्य मुक्तक शैली में है, पर प्रबंधकाव्य भी हैं। इन दो सौ वर्षों मेंशृंगारकाव्य का अपूर्व उत्कर्ष हुआ। पर धीरे-धीरे रीति की जकड़ बढ़ती गई और हिंदी काव्य का भावक्षेत्र संकीर्ण होता गया। आधुनिक युग तक आते आते इन दोनों कमियों की ओर साहित्यकारों का ध्यान विशेष रूप से आकृष्ट हुआ।

इतिहास साक्षी है कि अपने पराभव काल में भी यह युग वैभव विकास का था। मुगल दरबार के हरम में पाँच-पाँच हजार रूपसियाँ रहती थीं। मीना बाजार लगते थे, सुरा-सुन्दरी का उन्मुक्त व्यापार होता था। डॉ. नगेन्द्र लिखते हैं- वासना का सागर ऐसे प्रबल वेग से उमड़ रहा था कि शुद्धिवाद सम्राट के सभी निषेध प्रयत्न उसमें बह गये। अमीर-उमराव ने उसके निषेध पत्रों को शराब की सुराही में गर्क कर दिया। विलास के अन्य साधन भी प्रचुर मात्रा में थे। पद्माकर ने एक ही छन्द में तत्कालीन दरबारों की रूपरेखा का अंकन कर दिया है-

गुलगुली गिल में गलीचा हैं, गुनीजन हैं,
चाँदनी है, चिक है चिरागन की माला हैं।
कहैं पद्माकर त्यौं गजक गिजा है सजी
सेज हैं सुराही हैं सुरा हैं और प्याला हैं।
सिसिर के पाला को व्यापत न कसाला तिन्हें,
जिनके अधीन ऐते उदित मसाला हैं।
तान तुक ताला है, विनोद के रसाला है,
सुबाला हैं, दुसाला हैं विसाला चित्रसाला हैं। 6

ऐहलौकिकता,शृंगारिकता, नायिकाभेद और अलंकार-प्रियता इस युग की प्रमुख विशेषताएं हैं। प्रायः सब कवियों ने ब्रज-भाषा को अपनाया है। स्वतंत्र कविता कम लिखी गई, रस, अलंकार वगैरह काव्यांगों के लक्षण लिखते समय उदाहरण के रूप में - विशेषकरश्शृंगार के आलंबनों एवं उद्दीपनों के उदाहरण के रूप में - सरस रचनाएं इस युग में लिखी गईं। भूषण कवि ने वीर रस की रचनाएं भी दीं। भाव-पक्ष की अपेक्षा कला-पक्ष अधिक समृद्ध रहा। शब्द-शक्ति पर विशेष ध्यान नहीं दिया गया, न नाटयशास्त्र का विवेचन किया गया। विषयों का संकोच हो गया और मौलिकता का ह्रास होने लगा। इस समय अनेक कवि हुएकृ केशव, चिंतामणि, देव, बिहारी, मतिराम, भूषण, घनानंद, पद्माकर आदि। इनमें से केशव, बिहारी और भूषण को इस युग का प्रतिनिधि कवि माना जा सकता है। बिहारी ने दोहों की संभावनाओं को पूर्ण रूप से विकसित कर दिया। आपको रीति-काल का प्रतिनिधि कवि माना जा सकता है।

इस काल के कवियों को तीन श्रेणियों में बाँटा जा सकता है-

(1) रीतिबद्ध कवि,

(2) रीतिमुक्त कवि,

(3) रीतिसिद्ध कवि।

विद्वानों का यह भी मत है कि इस काल के कवियों ने काव्य मर्यादा का पूर्ण पालन किया है। घोरश्शृंगारी कविता होने पर भी कहीं भी मर्यादा का उल्लंघन देखने को नहीं मिलता है।

6

रीतिकाल की प्रवृत्तियाँ

रीतिकाल की विशेषताएँ

रीतिकाल की प्रवृत्तियाँ तपजपांस- हिन्दी साहित्य का उत्तर मध्यकाल रीतिकाल के नाम से पुकारा जाता है,इस समय के शासक साहित्य प्रेम,काव्य प्रेम तथा मनोरंजन के लिए कवियों को आश्रय देने लगे थे। कवियों का मुख्य ध्येय आश्रयदाताओं का मनोरंजन हो गया था। क्योंकि कवि चाँदी के चाँद टुकड़ों पर अपनी कला को राजदरबारों में गिरवीं रख चूका था। इस काल के कवियों में स्वतंत सुखी और परहित का अभाव है। राम और कृष्ण की प्रेम लीलाओं की ओट में कविगण श्रृंगार वर्णन, ऋतु वर्णन, नख शिख वर्णन आदि पर कविता लिखकर आचार्यत्व और पांडित्यपूर्ण की होड़ में लगे हुए थे। कवियों ने कलापक्ष में ही कुछ अधिक चमत्कार और नवीनता लाने का प्रयास किया। रीति का अर्थ शैली है चूँकि इन कवियों ने काव्य शैली की इस विषिस्ट पद्धति का विकास किया इसीलिए इस काल को रीतिकाल कहा जाता हैं। इस काल में अलंकार,रस,नायिका भेद,नख शिख वर्णन, छंद आदि काव्यांगों पर प्रचुर रचना हुई है।

रीतिकाल की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित है -

1. लौकिक श्रृंगारिकता

इस काल के कवियों का मुख्य काव्य रसश्रृंगार रस है। नायिकाओं का नख शिख वर्णन और कटाक्ष वर्णन ही इनका लक्ष्य रहा है। इसी कारण इस

काव्य का वर्णन विषयक अधिक विस्तार नहीं पा सका है। नारी को केवल भोग्या के रूप में देखा गया। वह न किसी की पुत्री थी न किसी की माता।

2. नायिका भेद

इन कवियों की लेखनी से नायिका भेद सुन्दर वर्णन प्रकाश में आया है। भेद वर्णन अत्यधिक उत्तेजक और कामुक भी है।

3. लक्षण ग्रंथों का निर्माण

इन काल के कवियों को लक्षण ग्रन्थ लिख कर आचार्य का भी कार्य करना पड़ा। किन्तु दोनों कार्यों में एक भी कार्य अच्छी तरह नहीं संपन्न हो सका। इस काल के कुछ कवियों ने लक्षण लिखकर स्वरचित उदाहरण प्रस्तुत किये। इनमें भूषण,देव आदि मुख्य हैं। दूसरे प्रकार के कवियों में बिहारी प्रमुख हैं जिन्होंने केवल उदाहरण प्रस्तुत किये।

4. अलंकारिकता

इस काल के कवियों को अलंकार प्रिय थे। वे मानते थे – भूषण बिना न सोई,कविता वनिता मित। इस दृष्टि से इन कवियों ने अपनी कविता कामिनी को अलंकर से खूब सजाया है।

5. ब्रज भाषा

इस काल की साहित्यिक भाषा है, जो कोमलता और मधुरता की दृष्टि से सर्वोपरि है। इसी कारण मुसलमान कवियों ने भी इसी भाषा को स्वीकार किया है।

6. मुक्तक कवि

रीति काल में प्रबंध काव्य लिखने का प्रचलन नहीं रह गया है। सभी कवियों ने मुक्तक काव्य शैली को अपनाया है। श्रृंगार वर्णन के लिए यह शैली सर्वाधिक उपयुक्त है। इन कवियों ने दोहा,सोरठा,कविता में अपनी भावनाओं का प्रकाशन किया है। साथ की रीतिकालीन साहित्य में भाव पक्ष की तुलना में काला पक्ष की प्रधानता है। वे अपनी रचनाओं में काव्य के काला पक्ष के इतने आग्रही हो गए थे कि भाव पक्ष की ओर उतना ध्यान ही नहीं गया। कला पक्ष

को सबल बनाने के लिए इन कवियों ने चित्र योजना,अलाकंकार योजना,नाद योजना तथा छंद योजना को महत्त्व दिया।

7. वीररस का प्रवाह

आदिकाल की वीर धारा जो भक्तिकाल में समाप्त हो गयी थी,रीतिकाल में पुनः उसका उत्थान हुआ। भूषण जैसे कवियों ने वीर धारा को राष्ट्रीयता की ओर मोड़ दिया है। ऐसे एतिहासिक पुरुषों को चारित्रिक बनाया गया है जिन पर हिन्दू जाति और धर्म की रक्षा का भार था।

निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि रीतिकाल की श्रृंगारिकता और विलास की प्रवृति जनता के समक्ष कोई आदर्श प्रस्तुत नहीं कर सकी। भाव पक्ष की दृष्टि से यह काव्य अधिक समृद्ध है। डॉ.भागीरथ मिश्र के शब्दों में – इस धारा के कवि ने जीवन के लिए अदम्य वासना जागृत कर दी है,सौन्दर्यानुभुती और सुरुचि की सुकुमार कसौटी प्रदान की है। केवल एक चेतावनी इस काव्य के सम्बन्ध में दी जा सकती है और वह यह है कि उसे चुने हुए रूप में पढ़ना अधिक श्रेयकर है।

7

केशव

केशव या केशवदास (जन्म (अनुमानत:) 1555 विक्रमी और मृत्यु (अनुमानत:) 1618 विक्रमी) हिन्दी साहित्य के रीतिकाल की कवि-त्रयी के एक प्रमुख स्तंभ हैं। वे संस्कृत काव्यशास्त्र का सम्यक् परिचय कराने वाले हिंदी के प्राचीन आचार्य और कवि हैं।

इनका जन्म सनाढ्य ब्राह्मण कुल में हुआ था। इनके पिता का नाम काशीराम था, जो ओरछानरेश मधुकरशाह के विशेष स्नेहभाजन थे। मधुकरशाह के पुत्र महाराज इन्द्रजीत सिंह इनके मुख्य आश्रयदाता थे। वे केशव को अपना गुरु मानते थे। रसिकप्रिया के अनुसार केशव ओरछा राज्यान्तर्गत तुंगारराय के निकट बेतवा नदी के किनारे स्थित ओड़छा नगर में रहते थे।

जीवन परिचय

आचार्य केशवदास का जन्म 1555 ईस्वी में ओरछा में हुआ था। वे सनाढय ब्राह्मण थे। उनके पिता का नाम काशीनाथ था। ओरछा के राजदरबार में उनके परिवार का बड़ा मान था। केशवदास स्वयं ओरछा नरेश महाराज रामसिंह के भाई इन्द्रजीत सिंह के दरबारी कवि, मन्त्री और गुरु थे। इन्द्रजीत सिंह की ओर से इन्हें इक्कीस गाँव मिले हुए थे। वे आत्मसम्मान के साथ विलासमय जीवन व्यतीत करते थे।

केशवदास संस्कृत के उद्भट विद्वान थे। उनके कुल में भी संस्कृत का ही प्रचार था। नौकर-चाकर भी संस्कृत बोलते थे। उनके कुल में भी संस्कृत छोड़ हिंदी भाषा में कविता करना उन्हें कुछ अपमानजनक-सा लगा -

भाषा बोल न जानहीं, जिनके कुल के दास।
तिन भाषा कविता करी, जड़मति केशव दास।।

केशव बड़े भावुक और रसिक व्यक्ति थे। कहा जाता कि एक बार वृद्धावस्था में वे किसी कुएं पर बैठे थे। वहां पानी भरने के लिए आई हुई कुछ स्त्रियों ने उन्हें बाबा कहकर संबोधन किया। इस पर उन्होंने निम्न दोहा कहा –

केशव केसनि असि करी, बैरिहु जस न कराहिं।
चंद्रबदन मृगलोचनी बाबा कहि कहि जाहिं।।

संवत 1608 के लगभग जहांगीर ने ओरछा का राज्य वीर सिंह देव को दे दिया। केशव कुछ समय तक वीर सिंह के दरबार में रहे, फिर गंगातट पर चले गए और वहीं रहने लगे।

1618 ईस्वी में उनका देहावसान हो गया।

रचनाएं

केशवदास रचित प्रामाणिक ग्रंथ नौ हैं: रसिकप्रिया, कविप्रिया, नखशिख, छंदमाला, रामचंद्रिका, वीरसिंहदेव चरित, रतनबावनी, विज्ञानगीता और जहाँगीर जसचंद्रिका। रसिकप्रिया केशव की प्रौढ़ रचना है, जो काव्यशास्त्र संबंधी ग्रंथ हैं। इसमें रस, वृत्ति और काव्यदोषों के लक्षण उदाहरण दिए गए हैं। इसके मुख्य आधारग्रंथ हैं – नाट्यशास्त्र, कामसूत्र और रुद्रभट्ट काशृंगारतिलक। कविप्रिया काव्यशिक्षा संबंधी ग्रंथ है, जो इन्द्रजीतसिंह की रक्षिता और केशव की शिष्या प्रवीणराय के लिये प्रस्तुत किया गया था। यह कविकल्पलतावृत्ति और काव्यादर्श पर आधारित है। रामचंद्रिका उनका सर्वाधिक प्रसिद्ध महाकाव्य है जिसकी रचना में प्रसन्नराघव, हनुमन्नाटक, कादंबरी आदि कई ग्रंथों से सामग्री ग्रहण की गई हैं। रतनबावनी में मधुकरशाह के पुत्र रतनसेन, वीरसिंह चरित में इन्द्रजीतसिंह के अनुज वीरसिंह तथा जहाँगीर जसचंद्रिका का यशोगान किया गया है। विज्ञानगीता में प्रबोधचंद्रोदय के आधार पर रचित अन्यापदेशिक काव्य है।

काव्यगत विशेषताएं

केशव अलंकार सम्प्रदायवादी आचार्य कवि थे। इसलिये स्वाभाविक था कि वे भामह, उद्भट और दंडी आदि अलंकार सम्प्रदाय के आचार्यों का अनुसरण करते। इन्होंने अलंकारों के दो भेद माने हैं, साधारण और विशिष्ट। साधारण के अन्तर्गत वर्णन, वर्ण्य, भूमिश्री–वर्णन और राज्यश्री–वर्णन आते है,

जो काव्यकल्पलतावृत्ति और अलंकारशेखर पर आधारित हैं। इस तरह वे अलंकार्य और अलंकार में भेद नहीं मानते। अलंकारों के प्रति विशेष रुचि होने के कारण काव्यपक्ष दब गया है और सामान्यत: ये सहृदय कवि नहीं माने जाते। अपनी क्लिष्टता के कारण ये कठिन काव्य के प्रेत कहे गए हैं। विशिष्ट प्रबंधकाव्य रामचंद्रिका प्रबधनिर्वाह, मार्मिक स्थलों की पहचान, प्रकृतिवर्णन आदि की दृष्टि से श्रेष्ठ नहीं है। परंपरा पालन तथा अधिकाधिक अलंकारों को समाविष्ट करने के कारण वर्णनों की भरमार है। चहल-पहल, नगरशोभा, साज-सज्जा आदि के वर्णन में इनका मन अधिक रमा है। संवादों की योजना में, नाटकीय तत्त्वों के संनिवेश के कारण, इन्हें विशेष सफलता मिली है। प्रबंधों की अपेक्षा मुक्तकों में इनकी सरलता अधिक स्थलों पर व्यक्त हुई है।

वर्ण्य विषय

केशव दरबारी कवि थे। अन्य दरबारी कवियों की भांति उन्होंने भी अपने आश्रयदाता राजाओं का यशोगान किया है। वीर सिंह देव चरित और जहांगीर जस चंद्रिका उनकी ऐसी ही रचनाएं हैं।

केशव का दूसरा रूप आचार्य का है। कवि-प्रिया और रसिक-प्रिया में इन्होंने संस्कृत के लक्षण, ग्रंथों का अनुवाद किया और उदाहरण स्वरूप अपनी कविताओं की रचना की।

राम चंद्रिका का विषय राम-भक्ति है किंतु केशव कवि पहले थे, भक्त बाद में। अत: उनमें भक्ति-भावना की अपेक्षा काव्य-चमत्कार के प्रदर्शन की भावना अधिक है। विज्ञान गीता में केशव ने वैराग्य से संबंधित भावनाओं को व्यक्त किया है।

प्रकृति चित्रण

राजदरबारों की साज-सज्जा के बीच रहने के कारण केशव की प्रवृत्ति प्रकृति में नहीं रही। उनका प्रकृति-चित्रण दोष-पूर्ण है। उसमें परंपरा का निर्वाद अधिक है, मौलिकता और नवीनता कम। वर्णन करने में कहीं-कहीं केशव ने काल और स्थान का भी ध्यान नहीं रखा है।

अलंकारों के बोझ से दबी प्रकृति अपना सहन सौंदर्य खो बैठी है। प्रकृति के संबंध में केशव की कल्पनाएं कहीं-कहीं पर बड़ी असंगत और अरुचिकर हो गई हैं।

कै सोनित कलित कपाल यह,
किल कपालिक काल को।

संवाद योजना

दरबारी कवि होने के कारण केशव में राजदरबारों की वाक्पटुता वर्तमान थी। अतः संवादों की योजना में उन्हें असाधारण सफलता मिली। उनके संवाद अत्यन्त आकर्षक हैं। उनमें राजदरबारों जैसी हाजिर-जवाबी और शिष्टता है। उनके द्वारा चरित्रों का उद्‌धाटन सुंदर ढंग से हुआ है। जनक-विश्वामित्र संवाद, लव-कुश संवाद, सीता-हनुमान संवाद इसी प्रकार के संवाद हैं।

'अंगद-रावण-संवाद' के अन्तर्गत एक उत्तर-प्रत्युत्तर देखिए -

रावण-
गेंद करेउं मैं खैल की, हर-गिरि केशोदास।
सीस चढाए आपने, कमल समान सहास।।
अंगद-
जैसो तुम कहत उठायो एक गिरिवर,
ऐसे कोटि कपिल के बालक उठावहीं।
काटे जो कहत सीस काटन घनेरे घाघ,
मगर के खेले कहा भट-पद पावहीं।।

पांडित्य-प्रदर्शन

आचार्य केशवदास उच्चकोटि के विद्वान थे। अतः उनके काव्य में कल्पना और मस्तिष्क को योग अधिक है। उनका ध्यान जितना पांडित्य-प्रदर्शन की ओर था उतना भाव-प्रदर्शन की ओर नहीं। पांडित्य-प्रदर्शन की इसी प्रवृत्ति के कारण कुछ आलोचकों ने केशव को हृदय-हीन कवि कहा है, किंतु यह आरोप पूर्णतः सत्य नहीं, क्योंकि पांडित्य प्रदर्शन के साथ-साथ केशव के काव्य में ऐसे अनेकानेक स्थल हैं जहां उनकी भावुकता और सहृदयतापूर्ण साकार हो उठी है।

अशोक वाटिका में हनुमान जी सीता जी को रामचंद्र जी की मुद्रिका देते हैं। मुद्रिका के प्रति सीता जी का कथन कितना भावपूर्ण है-

श्री पुर में बन मध्य है, तू मग करी अनीति।
कहि मुंदरी अब तियन की, को करि हैं परतीति।।

भाषा

केशव ने अपने काव्य का माध्यम ब्रजभाषा को बनाया, परन्तु ब्रजभाषा का जो ढला हुआ रूप सूर आदि अष्ट छाप के कवियों में मिलता है वह केशव की कविता में नहीं। केशव संस्कृत के प्रकांड़ पंडित थे। अतः उनकी भाषा संस्कृत से अत्यधिक प्रभावित है। उन्होंने संस्कृत के तत्सम शब्दों को ही नहीं, संस्कृत की विभक्तियों को भी अपनाया है, कहीं-कहीं तो उनके छंदों की भाषा संस्कृत ही जान पड़ती है-

रामचंद्र पद पद्मं वृंदारक वृंदाभिवंदनीयम।
केशवमति भूतनया लोचनं चंचरीकायते।।

केशव की भाषा में बुंदेलखंडी भाषा का भी काफी मिश्रण मिलता है। खारक (छोहारा), थोरिला (खूंटी), दुगई (दालान), गौरमदाइन (इन्द्रधनुष) आदि जैसे बुंदेली शब्दों का प्रयोग बराबर उनके काव्य में हुआ। अवधी भाषा के शब्दों का भी प्रयोग मिलता है। जैसे - इहां, उहां, दिखाउ, रिझाउ आदि।

केशव ने कहीं-कहीं तो शब्दों को गढ़ लिया है। जैसे - चाप से चापकीय। अप्रचलित शब्दों के प्रयोग में भी उन्होंने पूरी तरह स्वच्छंदता से काम लिया। जैसे - आलोक (कलंक), लांच (रिश्वत), नारी (समूह) आदि। जल के अर्थ में विष शब्द का प्रयोग केशव की भाषा में ही मिलता है -

विषमय यह गोदावरी, अमृतन को फल देति।
केशव जीवन हार को, दुख अशेष हर लेति।।

संस्कृत और बुंदेलखंडी के अत्यधिक प्रभाव, लंबी-लंबी शब्द-योजना अप्रचलित शब्दों के प्रयोग आदि के कारण केशव की भाषा में कहीं-कहीं अत्यन्त क्लिष्टता आ गई है।

केशव की भाषा का सामान्य रूप अपेक्षाकृत सुगम है। उसमें कहावतों और मुहावरों का भी यथा-स्थान प्रयोग हुआ है। लाज मरना कहावत का एक प्रयोग देखिए-

कहि केशव आपनि जांघ उघारि के,
आपहि लाजन की मरिई।

शैली

केशव की शैली पर उनके व्यक्तित्व की छाप स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है इस संबंध में उन्होंने अपने किसी पूर्व कवि का अनुसरण नहीं किया। अनेक

कवियों की कविताओं के बीच उनकी कविता को सरलता से पहिचाना जा सकता है।

संक्षेप में केशव की शैली प्रौढ़ और गंभीर है। पांडित्य-प्रदर्शन के कारण वह कुछ दुरूह हो गई है।

रस

केशव दास जी ने अपने काव्य में अनेक स्थलों पर विविध रसों की उत्कृष्ट व्यंजना की है, किंतु मुख्यत: वेश्रृंगार और वीर रस के कवि हैं।श्रृंगार के दोनों पक्षों को उन्होंने अपनाया है। वीरोचित उत्साह के मार्मिक वर्णन में तो वे अपनी सानी नहीं रखते। शत्रुघ्न के बाणों से मूर्छित लव के लिए विलाप करती हुई सीता के प्रति कुश का कथन कितना उत्साहपूर्ण है–

रिपुहिं मारि संहारिदल यम ते लेहुं छुड़ाय।
लवहिं मिलै हों देखिहों माता तेरे पाय।।

छंद

छंदों के विषय केशव का ज्ञान अपार था। जितने प्रकार के छंदों का प्रयोग उन्होंने किया हिंदी साहित्य में किसी ने नहीं किया। रामचंद्रिका में तो छंदों की विविधता इस सीमा तक पहुँच गई है कि विद्वानों ने उसे शब्दों का अजायबघर कह दिया है। केशव ने स्वत: लिखा है -

रामचंद्र की चंद्रिका बरनति हौं बहु छंद।

केशव की छंद योजना संस्कृत साहित्य की छंद योजना है। उन्होंने कविता, सवैया, दोहा आदि छंदों का भी सफलतापूर्वक उपयोग किया है।

अलंकार

केशव को अलंकारों से विशेष मोह था उनके अनुसार -

जदपि सुजाति सुलच्छनी, सुबरन सरस सुवृत्त
भूषन विन न विराजहीं कविता बनिता भित्त।।

अत: उनकी कविता में विभिन्न अलंकारों का प्रयोग सर्वत्र दिखाई देता है। अलंकारों के बोझ से कविता के भाव दब से गए हैं और पाठक को केवल चमत्कार हाथ लगता है।

जहां अलंकार-योजना प्रति केशव को कठोर आग्रह नहीं है, वहां उनकी कविता अत्यन्त हृदयग्राही और सरस हैं। उपमा-अलंकार का एक उदाहरण देखिए- दशरथ-मरण के उपरांत भरत जब महल में प्रवेश करते हैं तो वे माताओं को वृक्ष विहीन लताओं के समान पाते हैं।

मंदिर मातु विलोक अकेली।
ज्यों बिनु वृक्ष विराजत बेली।।

साहित्य में स्थान

केशव दासजी हिंदी साहित्य के प्रथम आचार्य हैं। हिंदी में सर्व प्रथम उन्होंने ही काव्य के विभिन्न अंगों का शास्त्रीय पद्धति से विवेचन किया। यह ठीक है कि उनके काव्य में भाव पक्ष की अपेक्षा कला पक्ष की प्रधानता है और पांडित्य प्रदर्शन के कारण उन्हें कठिन काव्य के प्रेत कह कर पुकारा जाता है किंतु उनका महत्त्व बिल्कुल समाप्त नहीं हो जाता। आचार्य रामचंद्र शुक्ल के शब्दों में केशव की रचना में सुर, तुलसी आदि की सी सरलता और तन्मयता चाहे न हो पर काव्यांगों का विस्तृत परिचय करा कर उन्होंने आगे के लिए मार्ग खोला। केशवदास जी वस्तुतः एक श्रेष्ठ कवि थे। सूर और तुलसी के पश्चात हिंदी-काव्य-जगत में उन्हीं की ही गणना की जाती है-

सूर सूर तुलसी ससी उडुगन केशवदास।
अबके कवि खद्योत सम जह-तह करत प्रकाश।।

8

भूषण (हिन्दी कवि)

भूषण (1613-1705) रीतिकाल के तीन प्रमुख कवियों में से एक हैं, अन्य दो कवि हैं बिहारी तथा केशव। रीति काल में जब सब कविश्रृंगार रस में रचना कर रहे थे, वीर रस में प्रमुखता से रचना कर भूषण ने अपने को सबसे अलग साबित किया। श्भूषण' की उपाधि उन्हें चित्रकूट के राजा रूद्रसाह के पुत्र हृदयराम ने प्रदान की थी। ये मोरंग, कुमायूँ, श्रीनगर, जयपुर, जोधपुर, रीवाँ, शिवाजी और छत्रसाल आदि के आश्रय में रहे, परन्तु इनके पसंदीदा नरेश शिवाजी और बुंदेला थे। कवि भूषण का परिवार आज कानपुर नगर के सजेती कस्बा में रहता है। कवि भूषण तिवारी खानदान के थे। जिनके वंशज शिवमोहन तिवारी आज सजेती कघ्स्बा में रहते में रहते है।

जीवन परिचय

कविवर भूषण का जीवन विवरण वह जाति के तिवारी ब्राह्मण परिवार से थे उनके जन्म मृत्यु, परिवार आदि के विषय में कुछ भी निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता परंतु सजेती कस्बा में एक कवि भूषण जी का एक परिवार रहता है, जो इस बात का दावा करता है कि वो ही कवि भूषण के वंशज है टिकवापुर गाँव छोड़ कर अंग्रेजो के जमाने में उनके पूर्वज यहाँ बस गए आज भी उनकी जमीने टिकवापुर गाव में पड़ती है। कवि भूषण की बाद की पीढ़ी का सति माता का एक मंदिर टिकवापुर में बना है जिसे यह परिवार अपनी कुलदेवी मानता है व हर छोटे-मोटे त्यौहार में उनकी पूजा-अर्चना करता है भूषण का जन्म संवत

1670 तदनुसार ईस्वी 1613 में हुआ। उनके पिता का नाम रत्नाकर त्रिपाठी था। वे चंड़ीसा राव थे-

भूषण का वास्तविक नाम घनश्याम था। शिवराज भूषण ग्रंथ के निम्न दोहे के अनुसार 'भूषण' उनकी उपाधि है, जो उन्हें चित्रकूट के राज हृदयराम के पुत्र रुद्रशाह ने दी थी -

कुल सुलंकि चित्रकूट-पति साहस सील-समुद्र।
कवि भूषण पदवी दई, हृदय राम सुत रुद्र।

कहा जाता है कि भूषण कवि मतिराम और चिंतामणि के भाई थे। एक दिन भाभी के ताना देने पर उन्होंने घर छोड़ दिया और कई आश्रयों में गए। यहां आश्रय प्राप्त करने के बाद शिवाजी के आश्रय में चले गए और अंत तक वहीं रहे।

पन्ना नरेश छत्रसाल से भी भूषण का संबंध रहा। वास्तव में भूषण केवल शिवाजी और छत्रसाल इन दो राजाओं के ही सच्चे प्रशंसक थे। उन्होंने स्वयं ही स्वीकार किया है-

और राव राजा एक मन में न ल्याऊं अब।
साहू को सराहों कै सराहौं छत्रसाल को।

संवत 1772 तदनुसार ईस्वी 1715 में भूषण परलोकवासी हो गए।

रचनाएँ

विद्वानों ने इनके छह ग्रंथ माने हैं - शिवराजभूषण, शिवाबावनी, छत्रसालदशक, भूषण उल्लास, भूषण हजारा, दूषनोल्लासा। परन्तु इनमें शिवराज भूषण, छत्रसाल दशक व शिवा बावनी ही उपलब्ध हैं। शिवराजभूषण में अलंकार, छत्रसाल दशक में छत्रसाल बुंदेला के पराक्रम, दानशीलता व शिवाबावनी में शिवाजी के गुणों का वर्णन किया गया है।

शिवराज भूषण एक विशालकाय ग्रन्थ है जिसमें 385 पद्य हैं। शिवा बावनी में 52 कवितों में शिवाजी के शौर्य, पराक्रम आदि का ओजपूर्ण वर्णन है। छत्रशाल दशक में केवल दस कवितों के अन्दर बुन्देला वीर छत्रसाल के शौर्य का वर्णन किया गया है। इनकी सम्पूर्ण कविता वीर रस और ओज गुण से ओतप्रोत है जिसके नायक शिवाजी हैं और खलनायक औरंगजेब। औरंगजेब के प्रति उनका जातीय वैमनस्य न होकर शासक के रूप में उसकी अनीतियों के विरुद्ध है।

शिवराज भूषण से कुछ छन्द

इन्द्र जिमि जंभ पर, वाडव सुअंभ पर।
रावन सदंभ पर, रघुकुल राज है।
पौन बरिबाह पर, संभु रतिनाह पर।
ज्यों सहसबाह पर, राम द्विजराज है।
दावा द्रुमदंड पर, चीता मृगझुंड पर।
भूषण वितुण्ड पर, जैसे मृगराज है।
तेजतम अंस पर, कान्ह जिमि कंस पर।
त्यों म्लेच्छ बंस पर, शेर सिवराज है।
ऊंचे घोर मंदिर के अन्दर रहन बारी।।
शिवा जो न होत तो सुनत हो सबकी।।

काव्यगत विशेषताएँ

रीति युग था पर भूषण ने वीर रस में कविता रची। उनके काव्य की मूल संवेदना वीर-प्रशस्ति, जातीय गौरव तथा शौर्य वर्णन है। निरीह हिन्दू जनता अत्याचारों से पीड़ित थी। भूषण ने इस अत्याचार के विरुद्ध आवाज उठाई तथा निराश हिन्दू जन समुदाय को आशा का संबल प्रदान कर उसे संघर्ष के लिए उत्साहित किया। इन्होंने अप काव्य नायक शिवाजी व छत्रसाल को चुना। शिवाजी की वीरता के विषय में भूषण लिखते हैं–

भूषण भनत महावरि बलकन लाग्यो सारी पातसाही के उड़ाय गये जियरे।
तमके के लाल मुख सिवा को निरखि भये स्याह मुख नौरंग सिपाह मुख पियरे।

इन्होंने शिवाजी की युद्धवीरता, दानवीरता, दयावीरता व धर्मवीरता का वर्णन किया है। भूषण के काव्य में उत्साह व शक्ति भरी हुई है। इसमें हिंदू जनता की भावनाओं को ओजमयी भाषा में अंकन किया गया है। भूषण ने कहा कि यदि शिवाजी न होते तो सब कुछ सुन्नत हो गया होता:

देवल गिरावते फिरावते निसान अली ऐसे डूबे राव राने सबी गये लबकी,
गौरागनपति आप औरन को देत ताप आप के मकान सब मारि गये दबकी।
पीरा पयगम्बरा दिगम्बरा दिखाई देत सिद्ध की सिधाई गई रही बात रबकी,
कासिहू ते कला जाती मथुरा मसीद होती सिवाजी न होतो तौ सुनति होत सबकी।

सांच को न मानै देवीदेवता न जानै अरु ऐसी उर आनै मैं कहत बात जबकी,

और पातसाहन के हुती चाह हिन्दुन की अकबर साहजहां कहै साखि तबकी।

बब्बर के तिब्बर हुमायूं हद्द बान्धि गये दो मैं एक करीना कुरान बेद ढबकी,

कासिहू की कला जाती मथुरा मसीद होती सिवाजी न होतो तौ सुनति होत सबकी।

कुम्भकर्न असुर औतारी अवरंगजेब कीन्ही कत्ल मथुरा दोहाई फेरी रबकी,

खोदि डारे देवी देव सहर मोहल्ला बांके लाखन तुरुक कीन्हे छूट गई तबकी।

भूषण भनत भाग्यो कासीपति बिस्वनाथ और कौन गिनती मैं भूली गति भव की,

चारौ वर्ण धर्म छोडि कलमा नेवाज पढि सिवाजी न होतो तौ सुनति होत सबकी।

भूषण के काव्य में सर्वत्र उदारता का भाव मिलता है। वे सभी धर्मों को समान दृष्टिकोण से देखते हैं। इनके साहित्य में ऐतिहासिक घटनाओं का यथार्थवादी चित्रण मिलता है। इन्होंने शिवाजी को धर्मरक्षक के रूप प्रशंसा की है तो जसवंत सिंह, करण सिंह आदि की आलोचना भी की है। भूषण ने सारा काव्य ब्रजभाषा में रचा था। ओजगुण से परिपूर्ण ब्रजभषा का प्रयोग सर्वप्रथम इन्होंने ही किया था। इन्होंने प्रशस्तियाँ भी लिखी है।

आज गरीब निवाज मही पर तो सो तुही सिवराज विरजै।

भूषण ने मुक्तक शैली में काव्य की रचना की। इन्होंने अलंकारों का सुन्दर प्रयोग किया है। कवित्त व सवैया, छंद का प्रमुखतया प्रयोग किया है। वस्तुतः भूषण बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। वे कवि व आचार्य थे।

भूषण वीर रस के श्रेष्ठ कवि हैं–

भूषण का वीरकाव्य हिन्दी साहित्य की वीर काव्य परंपरा में लिखा गया है। इनकी कविता का अंगीरस वीर रस है। इनकी रचनाएँ शिवराज भूषण, शिवाबावनी और छत्रसाल दशक वीर रस से ओतप्रोत है। ये तीनों कृतियाँ भूषण की वीर भावना की सच्ची निर्देशक है। यह काव्य अपने युग के आदर्श नायकों के चरित्र को प्रस्तुत करने वाला है। इनमें शिवाजी और छत्रसाल के शौर्य-साहस,

प्रभाव व पराक्रम, तेज व ओज का जीवंत वर्णन हुआ है। भूषण के वीरकाव्य की मुख्य विशेषता यह है कि उसमें कल्पना और पुराण की तुलना में इतिहास की सहायता अधिक ली गई है। काव्य का आधार ऐतिहासिक है। इसके अतिरिक्त, इस वीरकाव्य में देश की संस्कृति व गौरव का गान है। भूषण ने अपने वीरकाव्य में औरंगजेब के प्रति आक्रोश सर्वत्र व्यक्त किया है।

भूषण की वीरभावना का वर्णन बहुआयामी है। इसे हम युद्धमूलक, धर्ममूलक, दानमूलक, स्तुतिमूलक आदि रूपों में देख सकते हैं।

युद्धमूलक

वीर रस के स्थायी भाव उत्साह का उत्कृष्ट रूप युद्धभूमि में शत्रु को ललकारते हुए उजागर होता हैं शिवाजी स्वंय वीर थे और उनकी प्रेरणा से हिन्दू सैनिकों के मन में वीरता का भाव उत्पन्न हुआ था। भूषण ने उन सैनिकों की वीरता का वर्णन करते हुए कहा है:

घूटत कमान अरू तीर गोली बानन के मुसकिल होति मुरचान हू की ओट में।

ताहि समै सिवराज हुकम के हल्ल कियो दावा बांधि पर हल्ला वीर भट जोट में।

युद्धों का सजीव चित्रण

भूषण का युद्ध वर्णन बड़ा ही सजीव और स्वाभाविक है। युद्ध के उत्साह से युक्त सेनाओं का रण प्रस्थान युद्ध के बाजों का घोर गर्जन, रण भूमि में हथियारों का घात-प्रतिघात, शूर वीरों का पराक्रम और कायरों की भयपूर्ण स्थिति आदि दृश्यों का चित्रण अत्यंत प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किया गया है। शिवाजी की सेना का रण के लिए प्रस्थान करते समय का एक चित्र देखिए -

साजि चतुरंग बीररंग में तुरंग चढ़ि।
सरजा सिवाजी जंग जीतन चलत है।
भूषन भनत नाद विहद नगारन के।
नदी नद मद गैबरन के रलत हैं।
ऐल फैल खैल भैल खलक में गैल गैल,
गाजन की ठेल-पेल सैल उसलत हैं।
तारा सों तरनि घूरि धरा में लगत जिम,
धारा पर पारा पारावार ज्यों हलत हैं। -- (शिवा बावनी)

धर्ममूलक

कवि ने शिवाजी को धर्म व संस्कृति के उन्नायक के रूप में अंकित किया है। शिवाजी ने मुसलमानों से टक्कर ली तथा हिंदुओं की रक्षा की। उन्होंने शिवराज और छत्रशाल की महिमा का वर्णन किया है

कवि ने शिवाबावनी में कहा है :-

वेद राखे विदित पुराने राखे सारयुत,
राम नाम राख्यों अति रसना सुधार मैं,
हिंदुन की चोटी रोटी राखी है सिपहिन की,
कांधे में जनेऊ राख्यो माला राखी गर मैं।

दानमूलक

वीर रस के कवियों ने अपने नायक को अत्यधिक दानवीर दिखलाया है। भूषण ने शिवाजी की दानवीरता का अतिश्योक्तिपूर्ण वर्णन किया है। याचक को अपनी इच्छा से ज्यादा दान मिलता है। शिवास्तुति में कवि ने शिवाजी की अपूर्व दानशीलता का वर्णन किया है।

जाहिर जहान सुनि दान के बखान आजु,
महादानि साहितनै गरिब नेवाज के।
भूषण जवाहिर जलूस जरबाक जोति,
देखि-देखि सरजा की सुकवि समाज के॥

दयामूलक

भूषण के अनुसार, शिवाजी दया के सागर हैं। वे शरणागत पर दया करते थे। उन्होंने अपने सैनिकों को स्त्रियों व बच्चों को तंग न करने का निर्देश दिया हुआ था। वस्तुतः भूषण ने शिवाजी के पराक्रम, शौर्य व आतंक का प्रभावशाली वर्णन किया है। उन्होंने शिवाजी के धर्मरक्षक, दानवीर व दयावान, रूप को प्रकट किया है। इनके वीररस से संबंधित पद मुक्तक हैं। इनमें ओजगुण का निर्वाह है। हिन्दी के अन्य वीर रस के कविश्रृंगार का वर्णन भी साथ में करते हैं। जबकि भूषण का काव्यश्रृंगार भावना से बचा हुआ है। अतः कहा जा सकता है कि भूषण वीररस के श्रेष्ठ कवि हैं।

भाषा

भूषण ने अपने काव्य की रचना ब्रज भाषा में की। वे सर्वप्रथम कवि हैं जिन्होंने ब्रज भाषा को वीर रस की कविता के लिए अपनाया। वीर रस के अनुकूल उनकी ब्रज भाषा में सर्वत्र ही आज के दर्शन होते हैं।

भूषण की ब्रज भाषा में उर्दू, अरबी, फारसी आदि भाषाओं के शब्दों की भरमार है। जंग, आफताब, फौज आदि शब्दों का खुल कर प्रयोग हुआ है। शब्दों का चयन वीर रस के अनुकूल है। मुहावरों और लोकोक्तियों का प्रयोग सुंदरता से हुआ है।

व्याकरण की अव्यवस्था, शब्दों को तोड़-मरोड़, वाक्य विन्यास की गड़बड़ी आदि के होते हुए भी भूषण की भाषा बड़ी सशक्त और प्रवाहमयी है। हां, प्राकृत और अपभ्रंश के शब्द प्रयुक्त होने से वह कुछ क्लिष्ट अवश्य हो गई है।

शैली

भूषण की शैली अपने विषय के अनुकूल है। वह ओजपूर्ण है और वीर रस की व्यंजना के लिए सर्वथा उपयुक्त है। अत: उनकी शैली को वीर रस की ओज पूर्ण शैली कहा जा सकता है। प्रभावोत्पादकता, चित्रोपमता और सरसता भूषण की शैली की मुख्य विशेषताएं हैं।

रस भूषण की कविता की वीर रस के वर्णन में भूषण हिंदी साहित्य में अद्वितीय कवि हैं। वीर के साथ रौद्र भयानक-वीभत्स आदि रसों को भी स्थान मिला है। भूषण नेश्रृंगार रस की भी कुछ कविताएं लिखी हैं, किंतुश्रृंगार रस के वर्णन ने भी उनकी वीर रस की एवं रुचि का स्पष्ट प्रभाव दीख पड़ता है -

'न करु निरादर पिया सौ मिल सादर ये'

आए वीर बादर बहादुर मदन के,

छंद

भूषण की छंद योजना रस के अनुकूल है। दोहा, कवित्त, सवैया, छप्पय आदि उनके प्रमुख छंद हैं।

अलंकार

रीति कालीन कवियों की भांति भूषण ने अलंकारों को अत्यधिक महत्त्व दिया है। उनकी कविता में प्राय: सभी अलंकार पाए जाते हैं। अर्थालंकारों की

अपेक्षा शब्दालंकारों को प्रधानता मिली है। यमक अलंकार का एक उदाहरण देखिए-

ऊंचे घोर मंदर के अंदर रहन वारी,
ऊंचे घोर मंदर के अंदर रहाती हैं।
कंद मूल भोग करें कंद मूल भोग करें
तीन बेर खातीं, ते वे तीन बेर खाती हैं।
भूषन शिथिल अंग भूषन शिथिल अंग,
बिजन डुलातीं ते वे बिजन डुलाती हैं।
'भूषन' भनत सिवराज बीर तेरे त्रास,
नगन जड़ातीं ते वे नगन जड़ाती हैं।

अर्थ -

(1) ऊंचे घोर मंदर- ऊंचे विशाल घर-महल, ऊंचे विशाल पहाड़
(2) कंद मूल- राजघराने में खाने के प्रयोग में लाये जाने वाले जायकेदार कंद-मूल वगैरह, जंगल में कंद की मूल यानि जड़
(3) तीन बेर खातीं- तीन समय खाती थीं, ख्मात्र, तीन बेर ख्फल, खाती हैं
(4) भूषन शिथिल अंग- अंग भूषणों के बोझ से शिथिल हो जाते थे, भूख की वजह से उन के अंग शिथिल हो गए हैं
(5) बिजन डुलातीं- जिनके इर्द-गिर्द पंखे डुलाये जाते थे, वे जंगल-जंगल भटक रही हैं
(6) नगन जड़ातीं- जो नगों से जड़ी हुई रहती थी, नग्न दिखती हैं।

भूषण की राष्ट्रीय चेतना

भूषण राष्ट्रीय भावों के गायक है। उनकी वाणी पीड़ित प्रजा के प्रति एक अपूर्व आश्वसान हैं। इनका समय औरंगजेब का शासन था। औरंगजेब के समय से मुगल वैभव व सत्ता की पकड़ कमजोर होती जा रही थी। औरंगजेब की कटुरता व हिन्दुओं के प्रति नफरत ने उसे जनता से दूर कर दिया था। संकट की इस घड़ी में भूषण ने दो राष्ट्रीय पुरूषों - शिवाजी व छत्रसाल के माध्यम से पूरे राष्ट्र में राष्ट्रीय भावना संचारित करने का प्रयास किया। भूषण ने तत्कालीन जनता की वाणी को अपनी कविताओं का आधार बनाया है। इन्होंने स्वदेशानुराग, संस्कृति अनुराग, साहित्य अनुराग, महापुरुषों के प्रति अनुराग, उत्साह आदि का वर्णन किया है।

स्वदेशानुराग

भूषण का अपने देश के प्रति गहरा लगाव था। उनकी दृष्टि पूरे देश पर थी। उन्होंने देखा कि औरंगजेब देवालयों को नष्ट कर रहा है तो उनका मन विद्रोह कर उठा। शिवाजी के माध्यम से उन्होंने अपनी वाणी प्रकट की –

देवल गिरावते फिरवाते निसान अली ऐसे समय राव-राने सबै गये लबकी।

गौरा गनपति आय, औरंग की देखि ताप अपने मुकाम सब मारि गये दबकी।

संस्कृति अनुराग

भूषण ने संस्कृति का उपयोग हिंदुओं को खोया हुआ बल दिलाने के लिए किया। इन्होंने अनेक देवी-देवताओं के कार्यों का उल्लेख किया तथा उन महान् कार्यों की कोटि में शिवाजी के कार्यों की गणना की है। शिवाजी को धर्म व संस्कृति के उन्नायक रूप में अंकित किया गया है–

मीड़ि राखे मुगल मरोड़ि राखे पातसाह बैरी पीसि राखे बरदान राख्यौ कर मैं।

राजन की हद्द राखी तेग-बल सिवराज देव राखे देवल स्वधर्म राख्यो घर मैं।

साहित्य अनुराग

भूषण ने वेदशास्त्रों का गहन अध्ययन किया है। इन्होंने प्राचीन साहित्य के आधार पर ही अपने काव्य की रचना की उनका साहित्य प्रेम उनकी राष्ट्रीय भावना का परिचायक है।

महापुरुषों के प्रति श्रद्धा

भूषण ने अतीत व वर्तमान के महापुरुषों व जननायकों के प्रति श्रद्धा व्यक्त की है। इन्होंने शिवाजी और छत्रसाल बुन्देला या अन्य कोई पात्र सभी का उल्लेख केवल उन्हीं प्रसंगों में किया है, जो राष्ट्रीय भावना से संबंधित थे। जैसे–

रैयाराव चंपति को छत्रसाल महाराज भूषण सकत को बरवानि यों बलन के।

उत्साह

राष्ट्रीय साहित्य में चेतना का भाव होता है। भूषण के साहित्य में सजीवता, स्फूर्ति व उमंग का भाव है। मुगलों के साथ शिवाजी के संघर्ष का कवि उत्साहपूर्ण शैली में वर्णन किया है:-

दावा पातसाहन सों किन्हों सिवराज बीर,
जेर कीन्हीं देस हृदय बांध्यो दरबारे से।
हठी मरहठी तामैं राख्यौ न मवास कोऊ,
छीने हथियार डोलैं बन बनजारे से।

निस्संदेह, भूषण का काव्य राष्ट्रीय चेतना से ओत-प्रोत है। वे सच्चे अर्थों में राष्ट्रीय भावना के कवि हैं।

साहित्य में स्थान

भूषण का हिंदी साहित्य में एक विशिष्ट स्थान हैं। वे वीर रस के अद्वितीय कवि थे। रीति कालीन कवियों में वे पहले कवि थे जिन्होंने हास-विलास की अपेक्षा राष्ट्रीय-भावना को प्रमुखता प्रदान की। उन्होंने अपने काव्य द्वारा तत्कालीन असहाय हिंदू समाज की वीरता का पाठ पढ़ाया और उसके समक्ष रक्षा के लिए एक आदर्श प्रस्तुत किया। वे निस्संदेह राष्ट्र की अमर धरोहर हैं।

9

पद्माकर

रीति काल के ब्रजभाषा कवियों में पद्माकर का महत्त्वपूर्ण स्थान है। वे हिंदी साहित्य के रीतिकालीन कवियों में अंतिम चरण के सुप्रसिद्ध और विशेष सम्मानित कवि थे। मूलत: हिन्दीभाषी न होते हुए भी पद्माकर जैसे आन्ध्र के अनगिनत तैलंग-ब्राह्मणों ने हिन्दी और संस्कृत साहित्य की श्रीवृद्धि में जितना योगदान दिया है, वैसा अकादमिक उदाहरण अन्यत्र दुर्लभ है।

जन्म और कुल-परिचय

मूलत: तेलगु भाषी इनके पूर्वज दक्षिण के आत्रेय, आर्चनानस, शबास्य-त्रिप्रवरान्वित, कृष्ण यजुर्वेद की तैत्तरीय शाखा के यशस्वी तैलंग ब्राह्मण थे। पद्माकर के पिता मोहनलाल भट्ट सागर में बस गए थे। यहीं पद्माकर जी का जन्म सन् 1753 में हुआ। परन्तु 'हिंदी साहित्य का इतिहास' में आचार्य रामचंद्र शुक्ल और 'बांदा डिस्ट्रिक्ट गजेटियर' के अलावा कुछ विद्वान मध्यप्रदेश के सागर की बजाय उत्तर प्रदेश के नगर बांदा को पद्माकर की जन्मभूमि कहते हैं- शायद इसलिए भी क्योंकि बहुत से वर्ष उन्होंने बांदा में ही बिताए।

पद्माकर कवीश्वर एक प्रतिभा सम्पन्न जन्मजात कवि थे। इन्हें आशु-कवित्त-शक्ति अपने पहले के कवियों और संस्कृत-विद्वानों की सुदीर्घ वंश-परम्परा से ही प्राप्त थी। उनके पूरे कुटुंब का वातावरण ही कवितामय था। उनके पिता के साथ-साथ उनके कुल के अन्य लोग भी बहुत समादृत कवि थे। अत: उनके कुल-वंश का नाम ही 'कवीश्वर' पड़ गया था। मात्र 9 वर्ष की

उम्र में ही पद्माकर उत्कृष्ट कविता लिखने लगे थे। जयपुर नरेश महाराज जगत सिंह को पद्माकर ने अपना परिचय कुछ इस तरह दिया था–

भट्ट तिलंगाने को, बुंदेलखंड–वासी कवि, सुजस–प्रकासी श्पद्माकर' सुनामा हों।

जोरत कबित्त छंद–छप्पय अनेक भांति, संस्कृत–प्राकृत पढ़ी जु गुनग्रामा हों।

हय रथ पालकी गेंद गृह ग्राम चारू आखर लगाय लेत लाखन की सामां हों।

मेरे जान मेरे तुम कान्ह हो जगतसिंह तेरे जान तेरो वह विप्र मैं सुदामा हों।

कवि का ठाठबाट, राजसम्मान और दानशीलता

पद्माकर राजदरबारी कवि के रूप में कई नरेशों से सम्मानित किये गए थे। अत: वे अनेक राजदरबारों में सम्मानपूर्वक रहे। सुधाकर पांडेय ने लिखा है– '...पद्माकर ऐसे सरस्वतीपुत्र थे, जिन पर लक्ष्मी की कृपा सदा से रही। अतुल संपत्ति उन्होंने अर्जित की और संग–साथ सदा ऐसे लोगों का, जो दरबारी–संस्कृति में डूबे हुए लोग थे।। ..कहा जाता है जब वह चलते थे तो राजाओं की तरह (उनका) जुलूस चलता था और उसमें गणिकाएं तक रहतीं थीं।..' 'हिम्मत बहादुर विरुदावली' की भूमिका में दीन जी ने लिखा है –' पद्माकर ने अपनी काव्य–शक्ति के प्रताप से (एक अवसर पर तो) 56 लाख रुपये नकद, 56 गाँव और 56 हाथी इनाम में पाए थे।..रघुनाथ राव के पन्ना और जयपुर के रनिवासों में पद्माकर का पर्दा न था। उत्सवों और त्योहारों के अवसर पर राजसीश्रृंगार किये असूर्यपश्या कई कमनीय–कान्ताओं को उन्होंने नजदीक से देखा था।..' समय–समय पर नागपुर, दतिया,सतारा, सागर,जैतपुर, उदयपुर, ग्वालियर, अजयगढ़ और बूँदी दरबार की ओर से उन्हें बहुत सम्मान और धन आदि मिला। पन्ना महाराज हिन्दुपति ने उन्हें पांच गाँव जागीर में दिए। जयपुर नरेश सवाई प्रताप सिंह ने एक हाथी, स्वर्ण–पदक, जागीर तथा 'कवि–शिरोमणि' की उपाधि दी और बाद में जयपुर राजा जगत सिंह ने उन्हें दरबार में धन–संपदा और आदर दिया और साथ में कुछ गांवों की जागीर भी। 'कहते हैं कि पद्माकर अपनी उत्तरावस्था में तो आश्चर्यजनक रूप से इतने धनाढ्य व्यक्ति हो गए थे कि जरुरत पड़ने पर कई राजाओं–राजघरानों तक की 'आर्थिक–सहायता' स्वयं दरबारी कहे जाने वाले इस महाकवि ने की।' उनके वंशज गुरु कमलाकर 'कमल' और भालचंद्र राव इस

कोण से पद्माकर को मुगल-युग के भामा शाह जैसा मानते हैं जिन्होंने महाराणा प्रताप को मेवाड़ की सैन्यशक्ति पुनर्गठित करने के लिए अपनी संपत्ति दान कर दी थी।

ग्रन्थ-रचना

अजयगढ़ के गुसाईं अनूप गिरी (हिम्मत बहादुर) की काव्यात्मक-प्रशंसा में उन्होंने शहिम्मत-बहादुर-विरूदावली', जयपुर नरेश प्रतापसिंह के सम्मान में 'प्रतापसिंह-विरूदा ली' और सवाई जगत सिंह के लिए 'जगत-विनोद', ग्वालियर के शासक दौलतराव सिंधिया के सम्मान में आलीजाप्रकाश, जयपुर नरेश ईश्वरी सिंह की प्रशस्ति में 'ईश्वर-पचीसी' जैसे सुप्रसिद्ध कविता-ग्रंथों की रचना की। यों पद्माकर जी रचित ग्रंथों में सबसे जाने माने संग्रहों में - हिम्मतबहादुर विरुदावली, पद्माभरण, जगद्विनोद, रामरसायन (अनुवाद), गंगालहरी, आलीजाप्रकाश, प्रतापसिंह विरूदावली, प्रबोध पचासा, ईश्वर-पचीसी, यमुनालहरी, प्रतापसिंह-सफरनामा, भग्वत्पंचाशिका, राजनीति, कलि-पचीसी, रायसा, हितोपदेश भाषा (अनुवाद), अश्वमेध आदि प्रमुख हैं।

काव्य-सौंदर्य

पद्माकर ने सजीव मूर्त विधान करने वाली कल्पना के माध्यम से शौर्य, श्रृंगार, प्रेम, भक्ति, राजदरबार की सम्पन्न गतिविधियों, मेलो-उत्सवों, युद्धों और प्रकृति-सौंदर्य का मार्मिक चित्रण किया है। जगह-जगह लाक्षणिक शब्दों के प्रयोग द्वारा वे सूक्ष्म-से-सूक्ष्म भावानुभूतियों को सहज ही मूर्तिमान कर देते हैं। उनके ऋतु-वर्णन में भी इसी जीवंतता और चित्रात्मकता के दर्शन होते हैं। उनके आलंकारिक वर्णन का प्रभाव परवर्ती कवियों पर भी सघन रूप से पड़ा। पद्माकर की भाषा सरस, काव्यमय, सुव्यवस्थित और प्रवाहपूर्ण है। अनुप्रास द्वारा ध्वनिचित्र खड़ा करने में वे सिद्धहस्त हैं। काव्य-गुणों का पूरा निर्वाह उनके छंदों में हुआ है। छंदानुशासन और काव्य-प्रवाह की दृष्टि से दोहा, सवैया और कवित्त पर जैसा असाधारण अधिकार पद्माकर का था, वैसा अन्य किसी मध्यकालीन कवि की रचनाओं में दिखलाई नहीं पड़ता।

ब्रजभाषा के अलावा संस्कृत और प्राकृत पर भी पद्माकर का अद्भुत अधिकार था- उनके अप्रकाशित संस्कृत-लेखन पर गहन शोध-कार्य अपेक्षित

है। डॉ. बाबा साहेब आंबेडकर मराठवाड़ा विश्वविद्यालय औरंगाबाद के हिन्दी-संस्कृत विभाग ने कभी इसी दिशा में कुछ शोध-परियोजनाएं बनाई थीं।

निधन

कहा जाता है- जीवन के अंतिम समय में उन्हें कुष्ठरोग हो गया था, जिस से वह गंगाजल के औषधिमूलक प्रयोग के बाद अंततः स्वस्थ भी हो गए। जगन्नाथ पंडितराज की तरह गंगा की स्तुति में अपने जीवन-काल की अंतिम काव्य-रचना "गंगा-लहरी" लिखने के बाद कानपुर में गंगा-किनारे उनका 80 वर्ष की आयु में सन् 1833 में निधन हुआ। सागर में तालाब घाट पर पद्माकर की मूर्ति स्थापित है।

10

भिखारीदास

भिखारीदास रीतिकाल के श्रेष्ठ हिन्दी कवि थे।

कवि और आचार्य भिखारीदास का जन्म प्रतापगढ़ के निकट टेंउगा नामक स्थान में सन् 1721 ई. में हुआ था। इनकी मृत्यु बिहार में आरा के निकट भभुआ नामक स्थान पर हुई। भिखारीदास द्वारा लिखित सात कृतियाँ प्रामाणिक मानी गई हैं- रस सारांश, काव्य निर्णय,श्रृंगार निर्णय, छन्दोर्णव पिंगल, अमरकोश या शब्दनाम प्रकाश, विष्णु पुराण भाषा और सतरंज शासिका हैं।

इन्होंने अपना वंश परिचय दिया है। इनके पिता कृपालदास, पितामह वीरभानु, प्रपितामह राय रामदास और वृद्ध प्रपितामह राय नरोत्तम दास थे।

भिखारी दास जी के पुत्र अवधेश लाल और पौत्र गौरीशंकर थे जिनके अपुत्र मर जाने से वंश परंपरा खंडित हो गई।

भिखारी दास जी के निम्न ग्रंथों का पता लगा है -

रससारांश संवत - रससारांश 1799

छंदार्णव पिंगल - छंदार्णव पिंगल संवत 179

काव्यनिर्णय - काव्यनिर्णय संवत 1803

श्रृंगार निर्णय -श्रृंगारनिर्णय संवत 1807

नामप्रकाश कोश - नामप्रकाश कोश संवत 1795

विष्णुपुराण भाषा - विष्णुपुराण भाषा दोहे चौपाई में

छंद प्रकाश,

शतरंजशतिका,

अमरप्रकाश -संस्कृत अमरकोष भाषा पद्य में

कढ़ि कै निसंक पैठि जाति झुंड झुंडन में,
लोगन को देखि दास आनंद पगति है।
दौरि दौरि जहीं तहीं लाल करि डारति है,
अंक लगि कंठ लगिबे को उमगति है।
चमक झमक वारी, ठमक जमक वारी,
रमक तमक वारी जाहिर जगति है।
राम! असि रावरे की रन में नरन में,
निलज बनिता सी होरी खेलन लगति है।
अब तो बिहारी के वे बानक गए री, तेरी
तन दूति केसर को नैन कसमीर भो।
श्रौन तुव बानी स्वाति बूँदन के चातक भे,
साँसन को भरिबो द्रुपदजा को चीर भो।
हिय को हरष मरु धारनि को नीर भो, री।
जियरो मनोभव सरन को तुनीर भो।
एरी! बेगि करि कैं मिलापु थिर थापु, न तौ
आपु अब चहत अतनु को सरीर भो।
अंखियाँ हमारी दईमारी सुधि बुधि हारीं,
मोहूँ तें जु न्यारी दास रहै सब काल में।
कौन गहै ज्ञानै, काहि सौंपत सयाने, कौन।
लोक ओक जानै, ये नहीं हैं निज हाल में,
प्रेम पगि रही, महामोह में उमगि रहीं,
ठीक ठगि रहीं, लगि रहीं बनमाल में।
लाज को अंचौ कै, कुलधरम पचौ कै, वृथा,
बंधान सँचौ कै भई मगन गोपाल में।
–आचार्य भिखारीदास

कविता काल

'काव्यनिर्णय' में भिखारी दास जी ने प्रतापगढ़ के सोमवंशी राजा पृथ्वीसिंह के भाई बाबू हिंदूपतिसिंह को अपना आश्रयदाता लिखा है। राजा पृथ्वीपति संवत 1791 में गद्दी पर बैठे थे और 1807 में दिल्ली के वजीर सफदरजंग द्वारा छल से मारे गए थे। ऐसा जान पड़ता है कि संवत 1807 के बाद

इन्होंने कोई ग्रंथ नहीं लिखा। अतः इनका कविता काल संवत 1785 से लेकर संवत 1807 तक माना जा सकता है।

काव्यांगों का निरूपण

काव्यांगों के निरूपण में भिखारी दास को सर्वप्रधान स्थान दिया जाता है, क्योंकि इन्होंने छंद, रस, अलंकार, रीति, गुण, दोष शब्दशक्ति आदि सब विषयों का औरों से विस्तृत प्रतिपादन किया है। इनकी विषय प्रतिपादन शैली उत्तम है और आलोचनशक्ति भी इनमें कुछ पाई जाती है, जैसे हिन्दी काव्यक्षेत्र में इन्हें परकीया के प्रेम की प्रचुरता दिखाई पड़ी, जो रस की दृष्टि से रसाभास के अंतर्गत आता है। बहुत से स्थलों पर तो राधाकृष्ण का नाम आने से देवकाव्य का आरोप हो जाता है और दोष का कुछ परिहार हो जाता है, पर सर्वत्र ऐसा नहीं होता। इससे भिखारी दास ने स्वकीया का लक्षण ही कुछ अधिक व्यापक करना चाहा और कहा,

श्रीमाननि के भौन में भोग्य भामिनी और।
तिनहूँ को सुकियाह में गनैं सुकवि सिरमौर।

साहित्यदर्पण में नायिकाओं के स्वभावज अलंकार 18 कहे गए हैं – लीला, विलास, विच्छित्ति, विव्वोक, किलकिंचित, मोट्टायित्ता, कुट्टमित्ता, विभ्रम, ललित, विहृत, मद, तपन, मौग्धय, विक्षेप, कुतूहल, हसित, चकित और केलि। इनमें से अंतिम आठ को लेकर भिखारी दास ने भाषा में प्रचलित दस हावों में जोड़ दिया। इन्हें जानने के लिए हिन्दी में संस्कृत के मुख्य सिध्दांत ग्रंथों के सब विषयों का यथावत समावेश कर साहित्यशास्त्र का सम्यक् अध्ययन करना होगा।

भिखारी दास का आचार्यत्व

देव की भाँति भिखारी दास का स्थान है। यद्यपि इस क्षेत्र में औरों को देखते भिखारी दास ने अधिक काम किया है, पर सच्चे आचार्य का पूरा रूप इन्हें भी प्राप्त नहीं हो पाया है। परिस्थिति से ये भी लाचार थे। इनके लक्षण भी व्याख्या के बिना अपर्याप्त और कहीं कहीं भ्रामक हैं और उदाहरण भी कुछ स्थलों पर अशुद्ध हैं। जैसे – उपादान लक्षणा, इसका लक्षण भी अशुद्ध है और उसी के अनुरूप उदाहरण भी अशुद्ध है। अतः भिखारी दास भी औरों के समान वस्तुतः कवि के रूप में ही हमारे सामने आते हैं।

परिमार्जित भाषा

भिखारी दास ने साहित्यिक और परिमार्जित भाषा का व्यवहार किया है। श्रृंगार ही उस समय का मुख्य विषय था। देव ने भिन्न-भिन्न देशों और जातियों की स्त्रियों के वर्णन के लिए 'जातिविलास' लिखा, जिसमें नाइन, धोबिन, सब हैं, पर भिखारी दास ने रसाभाव या मर्यादा का ध्यान रख इनको आलंबन के रूप में न रखकर दूती के रूप में रखा है। इनके 'रससारांश' में नाइन, नटिनी, धोबिन, कुम्हारिन, बरइन, सब प्रकार की दूतियाँ हैं।

शैली

भिखारी दास में देव की अपेक्षा अधिक रसविवेक था। इनका ' श्रृंगारनिर्णय' अपने ढंग का अनूठा काव्य है। उदाहरण मनोहर और सरस है। भाषा में शब्दाडंबर नहीं है। न ये शब्द चमत्कार पर टूटे हैं, न दूर की सूझ के लिए व्याकुल हुए हैं। इनकी रचना कलापक्ष में संयत और भावपक्ष में रंजनकारिणी है। विशुद्ध काव्य के अतिरिक्त इन्होंने नीति की सूक्तियाँ भी बहुत सी कही हैं जिनमें उक्ति वैचित्र्य अपेक्षित होता है। देव की सी ऊँची आकांक्षा या कल्पना जिस प्रकार इनमें कम पाई जाती है उसी प्रकार उनकी सी असफलता भी कहीं नहीं मिलती। जिस बात को ये जिस ढंग से, चाहे वह ढंग बहुत विलक्षण न हो, कहना चाहते थे उस बात को उस ढंग से कहने की पूरी सामर्थ्य इनमें थी।

11

रीतिकाल : मिथक और यथार्थ

मध्यकाल जिसे कहते हैं उसको दो संदर्भों में देखना चाहिए। साहित्य के इतिहास का काल विभाजन प्रायः समाज के इतिहास के काल विभाजन के आधार पर ही होता है। इसमें कभी-कभी विडंबनापूर्ण स्थितियाँ भी होती हैं। जो स्वाभाविक है उसकी चर्चा बाद में और जो विडंबना है उसकी चर्चा पहले। हिंदी साहित्य में एक काल आदिकाल है। आदिकाल कहने से समाज के इतिहास के प्रसंग में ऐसा अर्थ निकलता है कि जैसे यह तब का काल होगा जब हम लोग यानी भारत का समाज जंगलों में रहता होगा। ऐसा नहीं है। यहाँ आदिकाल शुद्ध साहित्य से जुड़ा हुआ आदिकाल है। लेकिन हिंदी साहित्य का जो मध्यकाल है वह भारतीय समाज का भी मध्यकाल है। मतलब, मध्यकाल जो हिंदी साहित्य का है उसके दो हिस्से हैं। पहला हिस्सा भक्तिकाल का है और दूसरा हिस्सा रीतिकाल का है। समाज के इतिहास के हिसाब से देखिए, हिंदी वालों के लिए मैं कह रहा हूँ देश भर के नहीं, तो एक तरह से जो भक्तिकाल का साहित्य है वह लगभग विद्यापति से शुरू होता है, और यह बहुत लोगों को भ्रम है न जानने के कारण कि भक्ति कविता एक तरह से मुगल काल के साथ खत्म हो गई। ऐसा नहीं है। वैसे स्वयं मुगल काल भी उन्नीसवीं सदी तक आता है। आप लोगों में से सबको यह तो मालूम ही होगा कि अंतिम मुगल बादशाह बहादुर शाह जफर थे, 1857 ई. के विद्रोह के समय जिनको अंग्रेजों ने गिरफ्तार किया, उनके सारे परिवार को मार डाला और स्वयं बहादुर शाह जफर को रंगून भेज दिया। यह ऐसा प्रसंग है जिसको याद करते ही थोड़ी भी देश के प्रति प्रेम-भक्ति का भाव होगा तो खून खौलने लगता है। पर व्यापक रूप से मध्यकाल जिसमें भक्तिकाल और

रीतिकाल दोनों आते हैं, उसकी दो-एक विशेषताओं की चर्चा करके मैं रीतिकाल पर आऊँगा।

पहली विशेषता यह है, पता नहीं आप लोगों ने कभी इस बात पर ध्यान दिया है कि नहीं कि भक्तिकाल की और भक्ति काव्य की अखिल भारतीय स्तर पर पहली और बुनियादी विशेषता यह है कि प्रत्येक भक्त कवि अपनी मातृभाषा का कवि है। प्रत्येक भक्त कवि कह रहा हूँ, मुझे आज तक कोई अपवाद मिला नहीं है। एक तरह के अपवाद तो हैं, जो अपनी मातृभाषा के अलावा दूसरी भाषा में भी कविता लिखते हैं। जैसे स्वयं विद्यापति। विद्यापति तीन भाषाओं में कविता लिखते थे, संस्कृत में, अवहट्ट या अपभ्रंश में और अपनी मातृभाषा मैथिली में। पर महाकवि किसके हैं, संस्कृत के महाकवि नहीं हैं, अपभ्रंश के भी महाकवि नहीं है, महाकवि वो मैथिली के ही हैं। उसी तरह तुलसीदास अवधी में कविता लिखते थे और ब्रजभाषा में भी, पर ब्रजभाषा के महाकवि वो नहीं हैं। ब्रजभाषा के महाकवि सूरदास हैं। तुलसीदास अवधी के ही महाकवि हैं। इसलिए मैने कहा कि कुछ प्रतिभाशाली कवि अपनी मातृभाषा के अलावा दूसरी भाषाओं में भी कविता लिखते हैं पर बुनियादी महत्त्व तो उनकी मातृभाषा वाली कविता का है।

दूसरी विशेषता मध्यकाल की यह है कि जो मातृभाषाओं में कविता लिखी गई तो संस्कृत के पंडितों और फारसी के मुल्लाओं ने इसका बहुत विरोध किया। पता नहीं आपको मालूम है कि नहीं, अपना देश दो चीजों के लिए बहुत प्रसिद्ध है, पहली बात तो यही है कि यहाँ अश्लीलता को रेशमी चादर से ढँक कर उसको शालीनता कहते हैं और संस्कृति भी। इस दिल्ली शहर में कैसे अश्लीलता को रेशमी चादर से ढँकते हैं इसका प्रमाण इस दिल्ली शहर में औरतों के साथ हुई एक हजार ज्यादतियाँ हैं। एक साथ दोनों काम करते हैं, मंत्र भी जपते हैं - 'यत्र नार्यस्तु पूज्यंते रमंते तत्र देवता' और स्त्रियों की पूजा करने के नाम पर उनके साथ जो-जो करते हैं उनमें से अधिकांश तो कहने लायक नहीं है। इसीलिए मैं कह रहा हूँ कि अश्लीलता को शालीनता की रेशमी चादर में ढँक कर उसे संस्कृति कहते हैं। दूसरा क्या है, सच को छुपाना और झूठ को मुलम्मा लगा कर पेश करना, यह एक पुरानी आदत है। यह जो विरोध हुआ वह कितनी दूर तक गया, उसके दो प्रमाण मैं दूँगा, ज्यादे नहीं। पचासों मेरे पास हैं। मराठी के एक भक्त कवि थे, संतकवि ज्ञानदेव। उनकी प्रसिद्ध रचना है, ज्ञानेश्वरी। मराठी का महान काव्य माना जाता है उसे। असल में ज्ञानेश्वरी ओबी छंद में है।

इस ओबी छंद का ईजाद किया था ज्ञानेश्वर ने। ओबी छंद इसके पहले मराठी में नहीं था, देश में भी नहीं था। उन्होंने इस छंद को गढ़ा। उन्होंने ओबी छंद में और मराठी भाषा में गीता का अनुवाद किया है और व्याख्या भी की है। उसके तीसरे अध्याय की सत्रहवीं ओबी में ज्ञानेश्वर ने एक ऐसी बात लिखी है जिसे भारतीय समाज, संस्कृति और भाषाओं के इतिहास का सबसे क्रांतिकारी वाक्य मैं मानता हूँ। यह मैं आपसे पहले ही कह चुका हूँ कि वह गीता का अनुवाद है तो यह भी आप जानते ही हैं कि गीता अर्जुन और कृष्ण के बीच संवाद है। उस तीसरे अध्याय में अर्जुन कृष्ण से कहते हैं, ध्यान रखिए ज्ञानेश्वर के अर्जुन संस्कृत के अर्जुन नहीं, कि आप जो कुछ कह रहे हैं वह बहुत महत्त्वपूर्ण है लेकिन बहुत गूढ़ है। मेरी समझ में नहीं आ रहा है। इसलिए इसको सरल मराठी में समझा कर कहिए। पहली बार एक मनुष्य ने, अर्जुन कुल मिलाकर एक मनुष्य ही तो थे, ईश्वर तो कृष्ण थे, ईश्वर से कहा कि मेरी भाषा बोलो। आप जिस भाषा में कह रहे हो वह बहुत मुश्किल है इनलिए मेरी भाषा बोलो। तो इसका परिणाम क्या हुआ जानते हैं? यह जो काम उन्होंने किया यानी कि संस्कृत से महत्त्वपूर्ण अपनी मातृभाषा को बनाया, परिणाम यह हुआ कि पंडितों ने इक्कीस वर्ष की आयु में ज्ञानेश्वर को जीवित समाधि लेने के लिए मजबूर किया। यह तो हत्या करना है और बुरी तरह हत्या करना है। हत्या तो एक मिनट में हो सकती है, पर जीवित समाधि में जो आदमी होगा वह तो दो-एक दिन में मरेगा।

उसी तरह से मराठी के संत तुकाराम के साथ हुआ। मराठी संत तुकाराम जाति के माली थे। ब्राह्मण तो थे नहीं। इनसे कहा गया कि ये माली-वाली को अधिकार नहीं है कि ज्ञान का उपदेश दे इसलिए अपना यह लिखा-पढ़ा फेंको। एक कवि अपनी बात कह रहा है, वह चाहे जुलाहा कवि कबीर हो या माली कवि तुकाराम, वह फेंक काहे दे। तो पंडितों ने एक चाल चली और कहा कि तुम इसको नदी में डुबो दो और ईश्वर की कृपा होगी तो यह ऊपर आ जाएगा, नहीं तो हम मान लेंगे कि यह डूबने लायक थी। अब आपसे अलग से क्या यह बताने की जरूरत है कि ऋग्वेद से ले कर भगवत् गीता तक की किताबें नदी में डुबोई जाएँ तो सब डूब जाएँगी। कौन नहीं डूबेगी! उसमें तो स्वयं भगवान ही मौजूद हैं। वो भी डूब जाएँगे उसी में। यह चाल चली उन्होंने। कहा जाता है कि, बाकी तो कथा है, तुकाराम ने पंडितों के कहने पर फेंका - मुझे तो हमेशा लगता है कि पंडितों ने तुकाराम से जबर्दस्ती छीन कर नदी में फेंक दिया - लेकिन डूबा नहीं वह। जो भी हुआ, बाद में तुकाराम घर में रहने के बदले जंगलों

में घूमने लगे और कभी घर लौटे ही नहीं। मेरा अपना अनुमान यह है कि उनको मार दिया जंगल में। मराठी में जानते हैं कथा क्या चलती है, फिल्म बनी है तुकाराम पर जो हर साल दिखायी जाती है जिसमें दिखाया जाता है, सीधे स्वर्ग से विमान आया और तुकाराम को सशरीर स्वर्ग ले गया। जिन लोगों ने मारा वे सभी क्यों नहीं गए, स्वर्ग तो सब लोग जाना चाहते हैं! यह जो प्रवृत्ति है यह भी आपके यहाँ की ही प्रवृत्ति है।

मैं एक घटना आपको सुनाऊँ चलते-चलते। मैं जब कोई काम करता हूँ तो काफी गहरी खुदाई करता हूँ। जब मैंने ज्ञानेश्वरी पढ़ी और जब यह वाक्य, अर्जुन का कृष्ण से कथन, दिखाई पड़ा तो मुझे यह वाक्य बहुत ही महत्त्वपूर्ण लगा, अभी थोड़ी देर पहले आपसे मैंने कहा था कि मेरी जानकारी में भारतीय समाज में भाषाओं के इतिहास का सबसे क्रांतिकारी वाक्य है। मैंने इसका हिंदी अनुवाद खरीदा जो साहित्य अकादमी से छपा है और अंग्रेजी अनुवाद खरीदा जो भारतीय विद्या भवन, बंबई से छपा है। दोनों में दो काम एक साथ हुए हैं। दोनों अनुवाद करने वाले मराठी लोग हैं। दोनों की भूमिकाओं में ज्ञानेश्वर को लगभग ईश्वर जैसा दर्जा दिया गया है पर दोनों अनुवादों में यह वाक्य बदल दिया गया है कि 'सरल मराठी में समझा कर कहिए'। इसके बदले लिखा हुआ है कि श्सरल भाषा में समझा कर कहिएश्। माने, संस्कृत से जो प्रेम है वह भारी पड़ा ज्ञानेश्वर से प्रेम पर। यह अपने यहाँ की जानी-पहचानी प्रवृत्ति है। पर ऐसी इतनी प्रवृत्तियाँ हैं कि मैं उसी पर ध्यान दूँ तो आज का भाषण उसी पर हो जाएगा। पर वह मैं नहीं करूँगा।

यह जो मध्यकाल है, उसका जो रीतिकाल है, उसके बारे में जो कहना है उसे मैं आपके सामने रखना चाहता हूँ। पहली बात तो यह कि हिंदी आलोचना में महावीर प्रसाद द्विवेदी और बाद में रामचंद्र शुक्ल ने रीतिकाल के विरोध में बहुत सारा लिखा और दृष्टिकोण बनाया। महावीर प्रसाद द्विवेदी ने 'हिंदी नवरत्न' की समीक्षा लिखी थी। बाकी उनका छोड़ भी दीजिए, उसको देखिए तो उनका जो रीतिकाल विरोधी दृष्टिकोण है वह दिखाई देगा। यही काम आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने किया। ये दो हिंदी के इतने बड़े आलोचक थे कि बाद के लोगों ने उन्हीं की बातों को मिर्च-मसाला लगा कर कभी थोड़ा घटा कर कभी थोड़ा बढ़ा कर पेश किया। नया किसी ने लिखा हो, नगेंद्र जी समेत, ऐसा नहीं है। रामचंद्र शुक्ल का आरोप क्या था? पहला आरोप यह था कि इस कविता में श्रृंगारिकता बहुत है। यद्यपि आचार्य शुक्ल मन से स्वयंश्रृंगारिक व्यक्ति थे। एक

महिला से प्रेम भी करते थे। इसलिए, ठाकुर का एक छंद उनको बहुत प्रिय था, मुझे लगता है उनके मन से मिलता होगा, बार बार उसको दुहराया है। मैं अपको सुना रहा हूँ–

वा निरमोहिनि रूप की रासि जऊ उर हेतु न मानति होइहैं।
आवत जात घरी घरी मेरो सूरति तो पहिचानति होइहैं।
ठाकुर या मन की परतीति है, जो पै सनेह न मानति होइहैं।
आवत हैं नित मेरे लिए इतना तो विशेष के जानति होइहैं।।

इसको आचार्य शुक्ल ने अपने चार लेखों में उद्धृत किया है, इतिहास के साथ। इससे उनकी मानसिकता का पता चलता है। लेकिन यही काम जब रीतिकाल के कवि कर रहे थे तो शुक्ल जी को पसंद नहीं था।

आचार्य शुक्ल को दो और बातें पसंद नहीं थीं। उनके नापसंद करने का आधार है, ऐसा नहीं कि उन्होंने निराधार कहा लेकिन जो है वही मैं कह रहा हूँ। एक बात उनको पसंद नहीं थी और यह रीतिकाल की कमजोरी है, नायिका-भेद का विस्तार। अपार है वह। सात बरस की बच्चियों से ले कर सत्तर बरस की बुढ़ियाओं तक सब नायिकाएँ हैं। अरे कोई स्त्री भी होगी! जो नायिका के अलावा हो। आचार्य शुक्ल को सबसे अधिक नाराजगी इसी बात से थी इसीलिए आचार्य शुक्ल ने बहुत कड़ा वाक्य रीतिकाल के बारे में लिखा है। लिखा है, रीतिकाल में कविता बँधी नालियों में बहने लगी। लेकिन इसका एक दुष्परिणाम यह हुआ कि हिंदी के बाद के आलोचकों ने रीतिकाल की कविता को समग्रता में पढ़ने-समझने और मूल्यांकन करने के बदले रामचंद्र शुक्ल की बातों को दुहराना शुरू किया। अब कह गए हैं आचार्य शुक्ल, अरे आचार्य शुक्ल ने पढ़-वढ़ के कहा था। बाद के बहुत लोगों ने बिना पढ़े ही कहा, क्योंकि पढ़ते तो कुछ और ऐसा दिखाई देता जो मैं आपके सामने अभी रखने वाला हूँ।

रीतिकाल के बारे में मेरी पहली बात यह है कि अपने समय के समाज और इतिहास से जैसा संबंध रीतिकाल की कविता का है, वैसा संबंध भक्तिकाल में भी नहीं है। प्रमाण क्या है? मैं कोई रीतिकाल का प्रेमी नहीं हूँ। अभी ठीक बताया गया कि मैने पूरी किताब लिखी है, 'भक्ति आंदोलन और सूरदास का काव्य'। मैं स्वयं भक्तिकाल का प्रेमी हूँ। पर जो जहाँ है उसके बारे में बात की जाएगी न, जो वास्तविकता है, सच्चाई है। देखिए, रीतिकाल के सबसे बड़े कवि माने जाते हैं केशवदास। अपने समय और समाज के इतिहास से केशव दास की कविता का क्या संबंध है? केशवदास की दो रचनाएँ हैं, जो सीधे इतिहास से

जुड़ी हुई हैं मित्रो! मैं बाकी रामचंद्रिका आदि की बात नहीं कर रहा हूँ। एक उनका प्रबंध काव्य है, 'वीर सिंह देव चरितश। मैं दावे के साथ आपसे कह रहा हूँ कि रीतिकाल के बहुत सारे प्रेमियों ने इसे देखा ही नहीं है, बस नाम गिना देंगे। क्या है उसमें, उसमें मध्यकाल के इतिहास की जटिल समस्याएँ हैं। मुगल काल के इतिहास की खास तौर से। आप में से जो इतिहास के छात्र होंगे, उनको यह मालूम होगा कि अकबर के समय से और उनके राज्य-काल से संबंधित दो बड़ी घटनाएँ हुई। पहली घटना यह हुई कि उनके पुत्र सलीम ने, जो बाद में जहाँगीर बना, विद्रोह कर दिया। यह विद्रोह की घटना श्वीर सिंह देव चरित' में है। उसी विद्रोह का एक और नतीजा हुआ कि सलीम ने वीर सिंह, जो ओरछा का राजा था - बहुत शक्तिशाली और प्रभावशाली, की मदद से अबुल फजल की हत्या करवाई। यह सब वीर सिंह देव चरित में है। आप बताइए, हमारा हिंदी साहित्य का स्वर्णयुग माना जाता है भक्तिकाल, केशवदास और तुलसीदास बहुत दूर तक समकालीन थे, मतलब दोनों अकबर के जमाने में जीवित थे, भक्तिकाल के किस कवि ने मुगल शासन के बारे में लिखा है। किस कवि ने? हमारे जो परम आदरणीय बाबा तुलसीदास हैं, उन्होंने तो यह घोषित कर दिया - कीन्हें प्राकृत जन गुन गाना, सिर धुनि गिरा लागि पछिताना। यानि, अपने समय के किसी मनुष्य की कविता में चर्चा करना सरस्वती का अपमान है, तो राम का गुणगान करेंगे। सारा भक्तिकाव्य परलोकवाद की चिंता से लिखा गया है। सारा रीतिकाल अपने समय और अपने समाज की चिंता से लिखा गया है। उसमें कोई परलोकवाद नहीं है। और जो परलोकवादी हैं उनके बारे में रीतिकाल के ही एक कवि ने कहा कि 'राधा कन्हाई सुमिरन को बहानो है', वास्तविक भक्ति नहीं है, बहाना है वह। कहना तो है किसी स्त्री और पुरुष के बारे में कुछ, तो डर लगता है कि ज्यादा कहेंगे तो पिटाई-विटाई होने लगेगी। परसाई जी ने एक व्यंग्य लिखा था कि कविता में सर्वनामों का प्रयोग क्यों होता है। अधिकांश कविताएँ 'वह' में लिखी जाती हैं। परसाई जी ने कहा कि वह में न लिखा जाय, संज्ञा में नाम ले कर लिखा जाय तो कोई चप्पल ले कर पहुँच जाएगी न घर पर! इसलिए सर्वनाम ही बचाता है। वही हाल है, अपने समय और समाज की चिंता नहीं है। खैर, हिंदी में केवल एक आलोचक ने, आप लोगों में जो छात्र हैं उनकी मदद के लिए कह रहा हूँ, केशवदास के इस काव्य के ऐतिहासिक महत्त्व पर विचार किया है। मिल जाए किताब कहीं तो पढ़िए। किताब मैं ले कर आया हूँ आपको दिखाने के लिए। यह किताब है चंद्रबली पांडेय की 'केशव दास' नाम

से। कोई हिंदी का आलोचक इसका नाम नहीं लेता। जानते भी नहीं हैं लोग। उसके बाद केशवदास की दूसरी किताब है, यह थोड़ी छोटी है, 'जहाँगीर जस चंद्रिका'। मुझे लगता है कि इसके बारे में बिना बताए भी आप सीधे समझ जाएँगे कि सीधे मुगल इतिहास से जुड़ी है। मैं केशवदास के बारे में बहुत कुछ सोच कर आया था, मेरे पास नोट्स हैं, वह भी आपसे कहना चाहता था पर अब समय नहीं है। दूसरी एकाध बातें और कहूँगा।

केशवदास ने इसी श्वीर सिंह देव चरित' में राजनीति की विस्तार से चर्चा की है। रूपक में। यानी, केशवदास एक राजनीतिक कवि भी हैं। केशवदास ने एक ऐसे शब्द का उपयोग अपनी कविता में किया है जिसका उपयोग आज के कवि करते हैं, श्जनपदश। मैंने भक्ति काव्य बहुत पढ़ा है लेकिन मेरी जानकारी में किसी ने जनपद शब्द का उपयोग किया हो, मुझे नहीं मालूम। उसका संदर्भ ले कर आया हूँ आपके सामने लेकिन पढ़ूँगा नहीं। उसी श्वीर सिंह देव चरित' में। जनपद एकदम आधुनिक शब्द है, कोई नहीं जानता कि यह वहीं से आया है। आप लोगों को मालूम है कि आजकल जिला को या सब-डिवीजन को जनपद भी कहा जाता है। जनपद वैसे बहुत पुराना शब्द है। हिंदी के एक कवि हैं त्रिलोचन, उनकी कविता की किताब ही है, श्उस जनपद का कवि हूँ जो भूखा दूखा है!' इसलिए केशवदास पर ठीक से पुनर्विचार करने की जरूरत है। उनकी ऐतिहासिक दृष्टि, उनकी राजनीतिक चेतना पर नए सिरे से काम करने की जरूरत है पर उसके लिए मेहनत करनी पड़ेगी। आजकल लड़के-लड़कियाँ रिसर्च के नाम पर यात्रा कहाँ से कहाँ तक करते हैं, 'एक होस्टल से दूसरे होस्टल तक'। माने, लड़के लड़कियों के होस्टल तक और लड़कियाँ लड़कों के होस्टल तक, बस। इससे 'वीर सिंह देव चरित' नहीं मिलेगा। 'वीर सिंह देव चरित' या चंद्रबली पांडेय की किताब किसी पुरानी लाइब्रेरी में मिलेगी।

दूसरे इस काल के कवि जिनका सीधे इतिहास से संबंध है वे हैं भूषण। भूषण औरंगजेब के जमाने के कवि हैं। भूषण शिवाजी के समय के कवि हैं। मेरा ख्याल है यह तो आप लोगों को मालूम होगा कि उनके तीन ग्रंथ हैं और तीनों का संबंध इतिहास से है। 'शिवराजभूषण', यह शिवाजी पर है। 'शिवाबावनी', यह भी शिवा जी पर है। और उस समय ही मध्य प्रदेश के एक बहादुर राजा थे छत्रसाल, उन पर उनकी एक काव्य पुस्तक है, 'छत्रसाल प्रकाशश। इसका सीधे संबंध इतिहास से है। इस बात को और भी कम लोग जानते हैं, मित्रो, थोड़ी देर में उसकी और चर्चा करूँगा मैं, कि जिस समय औरंगजेब शासन कर

रहा था (आप लोगों को मालूम है कि 1707 ई. में मरा वह) तब तक इस देश में अंग्रेज आ गए थे। रीतिकाल के चार कवि ऐसे हैं, जो अंग्रेजों के आने से चिंतित थे। रामचंद्र शुक्ल ने भारतेंदु के प्रसंग में लिखा है कि जीवन दूसरी ओर जा रहा था और कविता दूसरी ओर जा रही थी यानी कि छाती पर अंग्रेजी साम्राज्यवाद चढ़ रहा था और कवि नायिका भेद की कविता कर रहे थे, यह पूरा सच नहीं है मित्रो। आप लोगों में से जिसको फुरसत हो, मैं किताब का नाम और छंद का नाम बता रहा हूँ भूषण के, उनकी किताब है 'शिवराज भूषण', उसमें छंद संख्या 116 और 261 इन दोनों में अंग्रेजों की चिंता है। 'शिवाबावनी' में छंद नं. 15 में अंग्रेजों की चिंता मौजूद है।

रीतिकाल के आखिरी महत्त्वपूर्ण कवि थे पद्माकर। मैं आपको पद्माकर का एक पूरा छंद पढ़ कर सुना रहा हूँ और तब आपको मालूम होगा कि रीतिकाल के कवि किस तरह से अंग्रेजों के आने से चिंतित थे। उस समय ग्वालियर का राजा था सिंधिया, बहुत प्रसिद्ध, माना जाता था बहादुर भी था, माना जाता था इसलिए कह रहा हूँ कि मध्यकाल में बहादुर होने का एक ही अर्थ था कि कौन कहाँ से कितनी औरतों को भगा कर ले गया है, यही बहादुरी का एक प्रमाण था, वहाँ हर लड़ाई में यही होता था, मुझे नहीं मालूम सिंधिया ने यह भी किया था या नहीं, खैर) पद्माकर ने उनको एक चिट्ठी लिखी कविता में, मैं वही चिट्ठी या कविता पढ़ रहा हूँ (कविता से मालूम होगा कि पद्माकर को मालूम था कि अंग्रेज कहाँ-कहाँ अपनी जड़ जमा रहे हैं धीरे-धीरे)–

मीनागढ़, बंबई, सुमंद, मंदराज, बंग,
बंदर को बंद कर बंदर बसाओगे।
कहैं पद्माकर कसक कश्मीर हूँ को,
पिंजर सो घेरि के कलिंजर छुड़ाओगे।
बाका नृप दौलत अलीजा महराज कभौ,
साजि दल पकड़ फिरंगिन भगाओगे।
दिल्ली दहपट्टि, पटना हू को झपटि कर,
कबहूँ लत्ता कलकत्ता की उड़ाओगे।

यह ललकारा था उन्होंने। पर कवि ललकार ही सकते हैं न। आजकल बहुत सारे कवि मनमोहन सिंह को ललकार रहे हैं। पर उन पर किसी चीज का फर्क नहीं पड़ता। पता नहीं सिंधिया पर कुछ फर्क पड़ा कि नहीं, कुछ किया

तो नहीं उन्होंने पर कवि ने अपना काम किया। मैं आपसे यह कह रहा था कि क्या साबित होता है इससे! और भी मेरे पास कविताएँ हैं, जो सीधे मुगल काल के इतिहास से जुड़ी हुई हैं। मैं उन सब को पढ़ नहीं रहा हूँ।

यह जो प्रवृत्ति है उससे लगता है कि रीतिकाल के कवि अपने समय के इतिहास से दो तरह से जुड़े थे, पहला तो यह कि सीधे उनका काल मुगल काल था उससे जुड़े हुए थे, उसका चित्रण-वर्णन अपने साहित्य में कर रहे थे और दूसरे आने वाली आफत अंग्रेजी राज की भी आपत्तियों-विपत्तियों को पहचानते थे, उसकी भी चर्चा कर रहे थे। घासीराम नाम के उस जमाने के एक कवि थे, आप लोगों में से कुछ को मालूम होगा कि उन्हीं के नाम पर विलासपुर में एक विश्वविद्यालय है, घासीराम ने लिखा सो पढ़ रहा हूँ आपसे, छंद का हिस्सा, उनकी किताब है - पथ्यापथ्य। 1834 ई. की। इसमें लिखा उन्होंने–

छाँड़ि के फिरंगिन को राज में सुधर्म काज
जहाँ पुण्य होत आज चलो उस देश को।

यानी, फिरंगियों के राज को छोड़ कर वहाँ चलो जहाँ पुण्य का काम होता हो, यहाँ तो सब पाप का काम होता है।

एक और कवि हैं रीतिकाल के, बहुत लोकप्रिय कवि हैं, आप लोग उन्हें जानते होंगे - दीनदयाल गिरि। बाबा दीनदयाल भी उनको कहा जाता है, उन्होंने लिखा है–

पराधीनता दुख महा, सुखी जगत स्वाधीन।
सुखी रमत सुक बन बिसय, कनक पींजरा दीन।

यह जो दोहा है, यह आधुनिककाल का लगता है। इस तरह की बात आज का कोई कवि कहेगा। जो तोता है, वह बन में तो सुख से रहता है लेकिन सोने के पिंजरे में भी रख दीजिए तो वह दीन हो जाता है। जंगल में स्वतंत्र रहता है। इससे ज्यादा चिंता मैथिलीशरण गुप्त के पास भी नहीं थी। स्वाधीनता के महत्त्व का गान कर रहे थे दीनदयाल गिरि। ऐसी कविता और ऐसे काल को रामचंद्र शुक्ल के कह देने से गरियाने का काम पिछले सौ साल से हो रहा है। ये कवि तो अपने समय के अंग्रेजी राज की पहचान कर रहे हैं, विरोध कर रहे हैं और रीतिकाल पर लिखी हुई एक किताब में भी क्या मजाल कि यह कहीं मिले। इसलिए मैं यह कह रहा हूँ। अभी दो एक उदाहरण और दूँगा। सीधे इतिहास से संबद्ध।

एक राजस्थान के कवि हैं, बूँदी में राज कवि थे, सूर्जबल मीसण नाम है। 'वंश भाष्कर' नाम का उनका महान ग्रंथ है। आठ खंडों में साहित्य अकादमी से छपा हुआ है। उसकी भाषा थोड़ी मुश्किल है, उसमें प्राकृत और राजस्थानी

मिली-जुली है इसलिए प्रायः आज के छात्रों को समझ में नहीं आएगी। हम लोगों को ही कम ही समझ में आती है। मेहनत करके उसमें से कुछ निकालते हैं। उसमें एक तो बूँदी राजघराने का पूरा इतिहास है। दूसरा औरंगजेब और दाराशिकोह के बीच जो बादशाहत के लिए सारी लड़ाई हुई, उसका इतिहास है उसमें। दारा शिकोह मध्यकाल के बड़े ही ट्रैजिक और महान पात्र थे, उनका संदर्भ रीतिकाल की अनेक कविताओं में है। भूषण की अनेक कविताओं में है। इसके साथ ही यह इतनी महत्त्वपूर्ण किताब है कि, एक इतिहासकार हैं कानूनगो, पूरा नाम उनका भूल रहा हूँ, कानूनगो अंत में आता है, वे दाराशिकोह के इतिहासकार हैं, यदुनाथ सरकार के शिष्य थे, ढाका में प्रोफेसर थे इतिहास के, उन्होंने दाराशिकोह पर एक किताब लिखी है और 'वंश भाष्कर' का उल्लेख किया है। हिंदी क्षेत्र में क्या है कि साहित्य और इतिहास के सारे संबंध खत्म हो गए हैं। इतिहास वाले साहित्य नहीं जानते।

वीर सिंह देव चरित के संबंध में चंद्रबली पांडेय ने लिखा है कि अकबर के शासन के बारे में और सलीम के विद्रोह के बारे में बहुत सारी ऐसी बातें केशवदास ने लिखी हैं, जो बहुत सारे इतिहासकारों को नहीं मालूम। क्योंकि उनके समय के कवि थे। जानते थे, क्योंकि राज दरबारों में रहते थे। पुराने और जो महत्त्वपूर्ण इतिहासकार थे वे साहित्य भी पढ़ते थे। हिंदुस्तान में क्या है, साहित्य पढ़ते तो हैं लेकिन केवल वही साहित्य पढ़ते हैं जिस समय का कोई इतिहास नहीं मालूम है। मान लीजिए कि आप वैदिक काल के समाज का इतिहास खोजने चलिए तो ऋगवेद के अलावा कुछ नहीं मिलेगा आपको। ऋगवेद ही पढ़कर काम करेंगे। रोमिला थापर भी यही करती हैं और उनके विरोधी भी यही करते हैं। जब एक जगह आप साहित्य का उपयोग करते हैं तो बाद के दिनों में क्यों नहीं करते। मध्यकाल का इतिहास लिखने वालों को केशवदास को पढ़ना चाहिए। पर कौन समझाए उनको, जब हिंदी वाले नहीं पढ़ते तो इतिहासकार क्यों पढ़ें। इसलिए मित्रो, रीतिकाल पर नए ढंग से सोचने, समझने और विचार करने की जरूरत है। तब आपको मालूम होगा कि रीतिकाल की कविता के बारे में जो प्रायः धारणाएँ बनाई गई हैं उनमें से अनेक गलत हैं। इस कविता का एक गहरा ऐतिहासिक पक्ष है और एक गहरा राजनीतिक पक्ष भी है।

❐❐❐